समकालीन साहित्य, संस्कृति, कला और विचार का मासिक

उत्तर प्रदेश

नवम्बर, दिसम्बर–2025, वर्ष 50

₹ 15/-

लौट आओ अटल...

–सूर्यकांत शर्मा

लौट आओ अटल,
खिल रहे कमल।
देखो तो,
वो पोखरण का रण,
जा डटा देखो,
वो पैगोंग संग।
दी थी जो सीख, वो काम आईं,
गलवान में गल गई, सारी ढिठाई।
वही चीन अब ले आया
दोस्ती का हाथ भाई।
कारगिल में जो देखे थे, ख्वाब, भाई।
फिर ऑपरेशन सिंदूर में हिंद ने अपनी ताकत
दिखाई।
अब दुश्मन तो दुश्मन
उसके आका को भी
उसकी औकात दिखाई।

अबकी बार तो जनता भी हो गई, शादाब, भाई।
काल के कपाल पर तुम लिख गए,
अमिट भारत विशाल अनुयायी।
हटे सभी संवैधानिक प्रसंग,
कश्मीर आया कन्याकुमारी के संग।
आश्रित अभिशप्त जुए को उतार फेंक,
देश आया आत्मनिर्भर के सोपान पर भाई।
अब इंडिया से
भारत की ओर बढ़ा
तो बस अटल की ही
याद आई।
कर रहे रोज ,नूतन संधान,
जय जवान, जय किसान, जय विज्ञान
और जय अनुसंधान।
नमन कर रहा, तुम्हें कृतज्ञ राष्ट्र आज
लौट आओ, मेरी धरती के बाज।
लौट आओ अटल, खिल रहे कमल।

◆

पता : फ्लैट बी–1, प्लॉट नं.–3, सेक्टर–5, द्वारका, नई दिल्ली–110075
मो. : 7982620596

अनुक्रम

स्मरण / श्रद्धांजलि
- हिंदी साहित्य के शतायु का जाना ❑ रंगनाथ द्विवेदी / 3

वृत्तान्त
- बचपन के संध्या दीपक : प्रेमचंद्र ❑ डॉ. शिवानी कटारा / 7

लेख
- बालमन और कहानियाँ ❑ भारती मिश्रा / 10

व्यंग्य
- कमाल के पांडेय जी ❑ डॉ. लालित्य ललित / 13

कहानियाँ
- दरख़्त ❑ श्याम नारायण सिंह / 15
- पापा की प्रोफाइल ❑ अनुजीत इकबाल / 17
- तलाश ❑ उदय यादव / 23
- फर्ज ❑ पूनम पांडे / 27
- जब वह भी चली गई ❑ डॉ. सतीश ''बब्बा'' / 32
- पदचिन्ह ❑ रोचिका अरुण शर्मा / 35

कविताएँ
- लौट आओ अटल... ❑ सूर्यकांत शर्मा / आवरण–2
- मेरी माँ की ममता ❑ विभा कनन / आवरण–3
- तुम आना... ❑ अखिलेश मणि त्रिपाठी / 40
- छलके हर रोज गगरिया जी ❑ अशोक अंजुम / 41
- गलियां ❑ सार्थक सक्सेना / 43
- शब्द कभी मरते नहीं ❑ नमिता वैश्य / 445
- वेदना ❑ समरपाल सिंह / 45
- प्रेम को ओढ़ लो ❑ प्रिंस लेनिन / 47
- गुमशुदा की तलाश ❑ रविन्द्र सिंह पंवार / 49
- जादू का पिटारा... ❑ अनिता रश्मि / 50
- ग़ज़ल ❑ नसीमा लखनवी / 52
- ग़ज़ल ❑ शाज़िया ख़ान / 53

पुस्तक समीक्षा
- चंदन किवाड़ : लोक गायिका मालिनी अवस्थी ❑ विजय कुमार तिवारी / 54
- अंजलि भर उजास उम्दा कहानी–संग्रह ❑ रत्नकुमार सांभरिया / 57
- सुहैलनामा एक सफल काव्यात्मक आत्मकथा ❑ मोहम्मद गोफरान नसीम / 60

गतिविधि
- आध्यात्मिक राष्ट्रवाद के प्रणेता थे राष्ट्रकवि ❑ सुरेन्द्र अग्निहोत्री / 62

संरक्षक एवं मार्गदर्शक : ❑ **संजय प्रसाद**
प्रमुख सचिव, सूचना

प्रकाशक एवं स्वत्वाधिकारी : ❑ **विशाल सिंह**
सूचना निदेशक, उत्तर प्रदेश

❑ **चन्द्र विजय वर्मा**
सहा. निदेशक, सूचना / सम्पादक

उप सम्पादक सूचना : ❑ **दिनेश कुमार गुप्ता**

सहयोग : ❑ **अजय कुमार द्विवेदी**
सहयुक्त सम्पादक

भीतरी रेखांकन : **आस्था / रीतिका / सिद्धेश्वर**

सम्पादकीय संपर्क : सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, पं. दीनदयाल उपाध्याय सूचना परिसर, पार्क रोड, लखनऊ
मो. : 9412674759, 7705800978
ईमेल : upmasik@gmail.com

दूरभाष : कार्यालय : ई.पी.ए.बी.एक्स 0522–2239132–33, 2236198, 2239011

उत्तर प्रदेश

❑ वर्ष 50 ❑ अंक 81, 82
❑ नवम्बर, दिसम्बर–2025 (संयुक्तांक)

पत्रिका information.up.nic.in वेबसाइट पर उपलब्ध है।

❑ **एक प्रति का मूल्य** : पंद्रह रुपये
❑ **वार्षिक सदस्यता** : एक सौ अस्सी रुपये
❑ **द्विवार्षिक सदस्यता** : तीन सौ साठ रूपये
❑ **त्रैवार्षिक सदस्यता** : पांच सौ चालीस रुपये

प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे मासिक पत्रिका 'उत्तर प्रदेश' और सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र. लखनऊ का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।
—सम्पादक

आवर्तन

वर्ष के अंतिम दो माह में नवंबर बेहद खुशगवार होता है। हल्की गुलाबी ठंड मन को सुकून देती है। धूप मीठी लगने लगती है। वहीं दिसंबर माह कड़कती सर्दी की सौगात लिए आता है। कड़कती सर्दी का भी अपना एक अलग आनंद है। ठिठुरते हुए आग सेंकना, मूंगफली–गुड़–चना खाना, चाय–पकौड़ों का साथ जीवन को रसमय बना देता है। यह वर्ष भी अनेक अच्छी–बुरी घटनाओं का साक्षी बना। राजनीति का उथल–पुथल भरा दौर पूरे देश में रहा। साहित्य एवं सिने जगत की अनेक प्रसिद्ध हस्तियां साथ छोड़ गईं। साहित्य जगत में अपने कृतित्व की अमिट छाप छोड़ने वाले युग मनीषी श्री रामदरश मिश्र जी दुनिया को अलविदा कह गए तो सिने जगत से 'शोले' फिल्म के 'वीरु' धर्मेन्द्र, अंग्रेजों के जमाने के जेलर असरानी कामिनी कौशल, सतीश शाह जैसे दिग्गज अभिनेता भी हमारे बीच नहीं रहे। कई कामयाबियां भी देश को मिलीं। सबसे बड़ी कामयाबी भारत की बेटियों ने क्रिकेट जगत में प्राप्त की। भारतीय महिला टीम ने कप्तान हरमनप्रीत कौर के नेतृत्व में दक्षिण अफ्रीका को 52 रनों से हराकर, पहली बार वनडे विश्व कप का खिताब अपने नाम किया। इस उपलब्धि से पूरा देश गौरवान्वित हुआ। आज भारत की बेटियां हर क्षेत्र में अपनी प्रतिभा से विश्व में अपनी गहरी पैठ बना चुकी हैं।

नवंबर माह में अनेक प्रमुख दिवस आते हैं। विश्व शाकाहारी दिवस, राष्ट्रीय शिक्षा दिवस, बाल दिवस एवं संविधान दिवस प्रमुख है। वहीं दिसंबर माह में मानवधिकार दिवस एवं सुशासन दिवस आते हैं। 25 दिसंबर को क्रिसमस दिवस के साथ ही देश के पूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय अटल बिहारी वाजपेयी का भी जन्मदिवस होता है जिसे सुशासन दिवस के रूप में मनाया जाता है। अटल बिहारी वाजपेयी एक ऐसे राजनेता थे जो न केवल कुशल प्रशासक थे अपितु एक प्रेरक कवि भी थे। उनकी कविताएं तन–मन को प्रेरणा से भर देती हैं और अंधेरे में भी रोशनी की नई किरण दिखाती हैं।

''भरी दुपहरी में अंधियारा
सूरज परछाई से हारा
अंतरतम का नेह निचोड़ें,
बुझी हुई बाती सुलगाएं
आओ फिर से दिया जलाएं।

साहित्य की बाती जलती रहनी चाहिए। साहित्य देश और संस्कृति का दर्पण होता है।

क्रिसमस दिवस में सांता आशाओं के दीपक जलाता है, सबकी इच्छाओं को पूर्ण करता है। बर्फीली जमीन पर जब सांता रेंडियर पर उपहारों की पोटली लेकर चलता है तो उसकी सफेद हिलती दाढ़ी से बर्फ सिमट जाती है और नई ऊष्मा बर्फ से प्रकट होने लगती है। इस अंक में डॉ. शिवानी कटारा का वृतान्त, श्याम नारायण सिंह, अनुजीत इकबाल, उदय यादव, पूनम पांडेय, डॉ. सतीश 'बब्बा' रोचिका शर्मा की कहानियाँ रवीन्द्र सिंह पवार, डॉ. सूर्यकांत शर्मा, समरपाल सिंह, अशोक अंजुम, अखिलेश मणि त्रिपाठी, नमिता वैश्य, प्रिंस लेनिन, अनिता रश्मि, सार्थक सक्सेना की कविताएं तथा विजय तिवारी, रतन कुमार सांभरिया, मो. गोफरान नसीम की पुस्तक समीक्षाएं हैं।

देश में सुख–शांति बनी रहे, नई प्रतिभाएं विश्व में अपनी चमक बिखेरें और नववर्ष देश में अनेक खुशियों को लेकर आए। इन्हीं शुभकामनाओं के साथ यह अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है। आपके सुझावों की बेसब्री से प्रतीक्षा रहेगी।

● दिनेश कुमार गुप्ता

हिंदी साहित्य के शतायु का जाना

❑ रंगनाथ द्विवेदी

31 अक्टूबर, 2025 को 101 वर्ष की अवस्था में रामदरश मिश्र ने देश की राजधानी दिल्ली में अपने जीवन की आखिरी सांस ली। उनका जाना हिंदी साहित्य के एक युग का जाना है। वह सिर्फ कवि लेखक ही नहीं बल्कि साहित्य के देवर्षि भी थे। हालांकि उनका शतायु जीवन रहा लेकिन केवल शतायु जीवन लिखना उनके लिए पर्याप्त नहीं होगा क्योंकि वह उससे कहीं ज्यादा साहित्य जीवन जी के गए हैं। और संभवतः वह हिन्दी साहित्य जगत के पहले ऐसे व्यक्ति या साहित्यकार हैं, जिनके जीवित रहते उनकी जन्मशती पिछले वर्ष मनाई गई। उनके जैसी स्मृति कितने साहित्यकारों की रही, मुझे नहीं पता लेकिन एक सौ एक वर्ष की उम्र में जब उन्हें इलाज के लिए अस्पताल में भर्ती कराया गया तो वह उस समय भी अपने लिखने–पढ़ने की साहित्य करधनी अपने साथ बांध कर सोये। रामदरश मिश्र को एक संपूर्ण साहित्य वृक्ष कहना और लिखना अतिशयोक्ति नहीं होगी। वह जड़ से लेकर साहित्य के तने तक लिख गये है। उनकी साहित्य कलम ने हर विधा का खूब आचमन किया हैं। उन्होंने साहित्य की विद्वता के लिए कभी अपनी भाषा को क्लिष्ट नहीं होने दिया। सच तो यह हैं कि, उनकी समस्त काव्य भाषा इतनी सहज और सरल रही कि आप उसे ''मां की लोरी की भाषा'' भी कह या लिख सकते हैं।

(1924–2025)

रामदरश मिश्र ने अपनी रचना यात्रा कविता से शुरू की। बाद में वह साहित्य की अन्य विधा से भी जुड़ते चले गये लेकिन पुस्तक रूप में उनका पहला गीत संग्रह ''पथ के गीत'' जो कि 1945 में प्रकाशित हुआ, फिर उसके बाद यह कवि के तौर पर पहचाने जाने लगे। रामदरश मिश्र हमेशा हिंदी साहित्य के सहज यात्री रहे। उनका जन्म एक ऐसी तारीख को हुआ जिस तारीख को पूरा देश अपनी आजादी और स्वतंत्रता की तारीख कहता

है। अर्थात उनका जन्म हमारी स्वतंत्रता के राष्ट्रीय पर्व 15 अगस्त, 1924 को हुआ हालांकि उनके जन्म के तेईस वर्ष बाद यह तारीख हमारे स्वतंत्रता और आजादी की तारीख बनी। इनका जन्म गोरखपुर के एक छोटे से गांव डुमरी में हुआ और हम सभी यह भलीभांति जानते है कि,– "गांव का साहित्य से वही संबंध है जो कि, हमारी सांस से हमारे शरीर का।" गांव हमारे साहित्य के सदगीत का एक उत्कृष्ट गीतग्रंथ है। वैसे उनके संपूर्ण साहित्य को अगर एक विधा विशेष में बांधना या लिखना हो तो यह संभव नहीं। जब हम उनको पढ़ते हैं तो लगता है कि,– "वह एक कवि से ज्यादा बेहतर उपन्यासकार हैं, कहानीकार हैं, निबंधकार है, आलोचक है, डायरी लेखक है, संस्मरण लेखक है लेकिन सबमें श्रेष्ठ मुझे उनका काव्य रूप हमेशा से ही भाता रहा है। गांव ने उन्हें रचा तो उन्होंने भी गांव को अपनी कविता में खूब रचा। बाद के दिनों में तो ऐसा लगा कि,– जैसे "रामदरश मिश्र के अंदर का वह बच्चा अब भी अपने गांव के आंगन मे खेल रहा हो जिनके साहित्य या काव्य के पांव में गांव की मिट्टी ना लगी हो। वह शहर का कंक्रीट तो लिख सकता है लेकिन जीवन के उस स्पंदन को नहीं लिख सकता जो गांव का स्पंदन है।"

उनके इस भाव को आप उनके कविता संग्रह ''आम के पत्ते'' की पक्तियों से समझ सकते है। जब वह लिखते हैं–

"मेरे मकान में एक आंगन भी है,
मैंने अपने आंगन में कच्ची जमीन छोड़ रखी हैं।"

उनके खाटी देहातीपन को आप उन्हीं की एक और बेहतरीन रचना से समझ सकते है–

"चाल–ढाल भी मामूली है,
रहन–सहन भी है देहाती,
नहीं घूमता महफिल–महफिल
ताने नजर फुलाये छाती।
लोगों में ही गुम होकर
लोगों सा ही हंसता जाता है
कोई नहीं राह में कहता–
वह देखो लेखक जाता है।"

हालांकि मेरा उनका मिलना नहीं हुआ है लेकिन उनके लिखे साहित्य से मिलना जरूर हुआ है जो उनके आमने–सामने मिलने से जरा भी कमतर नहीं। "उनका एक साहित्यिक विशेषांक मेरी साहित्यिक निधि में ठीक उस तरह रखा है जैसे, किसी ने अपने अभिभावक के संस्कार की निधि को अपने स्मृति में संभाल रखा हो।" उनके लेखन के संस्मरण में कई लेखकों और रचनाकारों का ऐसा मानना है कि, उनमें बड़े लेखकों वाला दिखावटीपन झूठे ताम–झाम और झूठी व्यस्तता जैसा आडंबर नहीं था।

बेशक उनके जीवन की आखिरी सांस देश की राजधानी में टूटी लेकिन देश की यह राजधानी गांव के इस फकीर को उसकी तबीयत से अलग न कर सकी। रामदरश मिश्र ऐसे पहले साहित्यकार और रचनाकार रहे जिनसे उनकी अपनी पीढ़ी से ज्यादा युवा पीढ़ी प्यार करने लगी थी। शायद इसके मूल में उनकी सहजता, सरलता और युवा साहित्यकारों से खुलकर संवाद करना प्रमुख कारण रहा हो। कुछ एक युवा साहित्यकार का तो यह तक कहना था कि, – "उन्होंने कभी भी साहित्य के इतने वरिष्ठ युवा से कभी बात नहीं की।" रामदरश मिश्र साहित्य के हर विधा की एक गांठरी है, जो खुले तो किसी भी पाठक को आत्मतृप्त कर दे। वैसे उनका साहित्यिक कालखंड सहजता और सरलता के साथ तमाम साहित्यिक जटिलता का भी था। उनके समय भी साहित्यिक पुरस्कार पाने की उठा–पटक गुटबाजी चरम पर थी जैसा कि, आज भी है। लेकिन तब और आज में एक फर्क है। "तब साहित्य पुरस्कार के पास भी पर्याप्त साहित्य था, अब पुरस्कार है लेकिन उसके पास उतना पर्याप्त साहित्य नहीं है। लेकिन ऐसा भी नहीं की लोग बेहतर साहित्य नहीं लिख रहे।" बस वह अपने पास आने वाली युवा पीढ़ी से इतना जरूर कहते थे कि,– "तुम सभी साहित्य की इस निर्मल नदी को दूषित होने से बचाये रखना यही साहित्य के प्रति तुम्हारा प्यार और तुम्हारा पुण्य होगा।"

रामदरश मिश्र का युग छायावाद का युग था। छायावाद आधुनिक साहित्य के 'काल का गौरव काल' है। उस समय का काव्य साहित्य लौकिक संवेदना की प्रामाणिकता और अभिव्यक्ति संवेदना की अप्रामाणिकता के द्वंद से पीड़ित था। जबकि समय अब अपने करवट और समय के वर्तमान विचलन से निकलने के प्रयास में था। हालांकि छायावाद की इस बेड़ी को तोड़ने के प्रयास के तौर पर हम सूर्यकांत त्रिपाठी ''निराला'' का नाम तो ले सकते है लेकिन बस नाम ही ले सकते हैं, क्योंकि बदलाव की जो पूर्णता थी वह इतने से तृप्त नहीं हुई, वह बेचैन रही। इसी बेचैनी ने छायावाद को नई कविता की तरफ मुड़ने को विवश कर दिया क्योंकि धीरे–धीरे छायावाद वस्तु जगत में अपनी जर्जरता से लोक–भाव से कुछ कटने लगा था। उसी साहित्य कटान को नई कविता ने रोक लिया। हिन्दी साहित्य के दो तीर्थ नगर बनारस और इलाहाबाद हमेशा से रहे "बाबा तुलसी के रामचरित मानस से लेकर, कबीर के दोहे तक, फिर आधुनिक मीरा से लेकर हरिवंश राय बच्चन तक के साहित्य की उर्वरता के यह दो साहित्य नगर गवाह रहे।" इन दोनों नगरों के तट को छूती हुई मां गंगा जब कल–कल निनाद करती हुई बहती है तो लगता है कि,– "जैसे सुमित्रानंदन पंत की कविता ''नौका विहार कर रही हो'' ऐसी ही निनाद की नगरी बनारस में काफी समय तक रामदरश मिश्र का रहना हुआ। साहित्य की यह दोनों नामी नगरी साहित्यिक गहमा–गहमी के केंद्र में रहे आजीवन उनकी यादों में बनारस और इलाहाबाद रहा। "वह बनारस की साहित्य ष्चेतनाष और इलाहाबाद के ''परिमल'' को याद करते तो उन्हें बनारस के अपने उस कमरे की याद हो आती, जहां एक रात नागार्जुन ठहरे थे और जिस रात वह उनके यहां ठहरे थे दुर्भाग्य से उस दिन बिजली ना होने की वजह से पंखा नहीं चला तो उस भीषण गरमी की पूरी रात उन्होंने जागकर कविता लिखी।" वह अपनी उस झेप को आज भी महसूस करते है और कहते है कि,– "उन्होंने फिर साहित्य में दोबारा किसी नागार्जुन को नहीं देखा।" वह मेरी शर्मिंदगी और झेप को दूर करते हुए बोले कि,– "तुम नाहक झेप रहे हो कवि। जीवन ऐसा ही हो मैं फिर किसी रात तुम्हारे यहां ठहरुं, यह मेरा सौभाग्य होगा।"

बेशक उनके जीवन की आखिरी सांस देश की राजधानी में टूटी लेकिन देश की यह राजधानी गांव के इस फकीर को उसकी तबीयत से अलग न कर सकी। रामदरश मिश्र ऐसे पहले साहित्यकार और रचनाकार रहे, जिनसे उनकी अपनी पीढ़ी से ज्यादा युवा पीढ़ी प्यार करने लगी थी। शायद इसके मूल में उनकी सहजता, सरलता और युवा साहित्यकारों से खुलकर संवाद करना प्रमुख कारण रहा हो।

रामदरश मिश्र को साहित्य का रामदरश मिश्र बनाने में बनारस का सर्वांगीण योगदान रहा। वह अपने बनारस के साहित्यिक प्रवास को जब भी संस्मरण करते हुए बताते तो वह एक नाम 'आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी' का जरूर लेते। क्योंकि उन्होंने उन्हें अपना सुयोग्य शिष्य मान लिया था। उन्होंने रामदरश मिश्र को काफी संवारा और आज भी सर्वविदित हैं कि, उन्होंने अपने संपादन में प्रकाशित ''सरस्वती'' पत्रिका में कभी भी निराला को नहीं छापा। ऐसे में रामदरश मिश्र का उनका शिष्य होना उनके संस्मरण की वैसी ही उपलब्धि रही जैसे कि, हरिवंश राय बच्चन ने अपने एक संस्मरण में यह लिखा था कि ''वह अपने जीवन में चाहे कोई और उपलब्धि हासिल कर पाये या न कर पाये उनके लिए इतनी ही उपलब्धि बहुत हैं कि, उन्होंने उस कार को धक्का दिया था जिसमें महात्मा गांधी बैठे थे।'' रामदरश मिश्र नामवर सिंह को याद करते हुए एक बड़ी ही मजेदार टिप्पणी करते हुए बताते हैं कि,– "नामवर सिंह विद्वान तो थे ही इसके अलावा वह लीलापुरुष भी थे।" उन्हें साहित्यिक महफिलों की जादूगरी खूब आती थी लेकिन वह रामदरश मिश्र के साहित्य की एक सुपीरियारिटी कॉम्प्लेक्स से आजीवन घिरे रहे। इसको लेकर डॉक्टर विश्वनाथ त्रिपाठी ने अपनी पुस्तक ''व्योमकेश दरवेश'' में यह साफ–साफ लिखा हैं कि, नामवर सिंह को पता नहीं क्यों रामदरश मिश्र की कविताएं पसंद नहीं थी? वैसे एक और

साहित्यिक शिकायत हम अपने इस लेख में करने से गुरेज नहीं करते कि, साहित्यिक मूल्यांकन भी गुटबाजी का शिकार रहा है। अगर ऐसा न होता तो रामदरश मिश्र का साहित्यिक मूल्यांकन देर से न होता जबकि नामवर सिंह को उन्होंने पांच–पांच बार लिखा लेकिन नामवर सिंह और उनकी पुरस्कार समितियों से कभी भी उनका नाम सामने नहीं आया।

वह बताते है कि, ऐसा भी नहीं था, उस समय लोग मेरे साहित्य से या मुझसे अंजान थे। मैं एक कवि के तौर पर जान लिया गया था। हाँ! यह जरूर था कि, मेरा झुकाव छायावाद की अपेक्षा प्रगतिवाद की तरफ ज्यादा था। मैं मार्क्सवाद से काफी प्रभावित रहा एक तरह से छायावाद के स्थापित भाषा संस्कार से मेरी दूरी रही उसका कारण मेरे खुद का संघर्षीय जीवन था। इसी संघर्षमय जीवन की आपदा से राहत के लिए शायद मेरा कवि सम्मेलनीय उद्भव हुआ। क्योंकि वहां जाने से पैसे की आमद के साथ ही कवि मित्रों से मुलाकात भी होती रही। मैं काफी समय तक कवि सम्मेलनों का यायावर रहा। वह अपनी एक बहुचर्चित रचना में लिखते हैं कि,– ''चल रहा हूं कि, गति से पंथ का निर्माण होगा'' फिर उनकी ऐसी ही एक रचना जिसे उन्होंने मूर्त या अमूर्त रूप में जिया था ''आंधियों में भी दिया का दीप जलना जिंदगी है, पत्थरों को तोड़ निर्झर का निकलना जिंदगी हैं।" कवि प्रेम के सौंदर्यशास्त्र से अछूता नहीं रहता। उसके भी दिल को प्रेम का संयोग और वियोग उतना ही प्रभावित करता है जितना कि एक सामान्य व्यक्ति या मनुष्य को करता है। वह भी प्रेम की शीतलता ढूंढता है, इसे आप रामदरश मिश्र की प्यार शीर्षक से लिखी हुई उनकी एक छोटी सी कविता से बखूबी समझ सकते हैं– ''कुछ फूल, कुछ कांटे, हमने आपस में बांटे, यात्रा के हर मोड़ पर हमने, एक दूसरे का इंतजार किया है, हां हमने प्यार किया है।'' उन्होंने अनगिनत रचनाएं की। लगभग डेढ़ दर्जन कविता संग्रह, अनेक कहानी संग्रह, पंद्रह उपन्यास, छः गजल संग्रह, आत्मकथा के कई खंड, संस्मरणों की कई कृतियां, कई यात्रा वृतांत लिखने वाले वह हिन्दी साहित्य के ''लिविंग लीजेंड'' बन गए। फिर भी एक कौतूहल हर पाठक या साहित्यकार के मन में यह है कि, उन्हें आखिर साहित्य के किस खांचे में बिठाये आखिर वह मूलतः क्या है। क्योंकि उन्होंने जितना काव्य लिखा है, उतना ही गद्य भी। ऐसा नहीं कि साहित्य में केवल तारीफ ही है। साहित्य का एक पक्ष उसकी आलोचना भी है। उनके आलोचना के भी 11 ग्रंथ प्रकाशित है लेकिन रामदरश मिश्र से जितनी बार भी लोगों ने उनके साहित्य के बारे में पूछा उनका यही एक जवाब हमेशा रहा कि, वह मूलतः कवि है, बाकी तो उन्होंने जो भी लिखा, बाद में लिखा।

रामदरश मिश्र जी के साहित्यिक अवदान के लिए उन्हें विभिन्न साहित्यिक सम्मान मिले। उन्हें कविता संग्रह 'आग की हंसी'' के लिए 2015 में ''साहित्य अकादमी पुरस्कार'' मिला. इन्हें 2021 का ''सरस्वती सम्मान'' उनके कविता संग्रह "मैं तो यहां हूं" के लिए दिया गया यह पुरस्कार के.के. बिड़ला फाउंडेशन द्वारा प्रदान किया जाता है। उन्हें दिल्ली हिन्दी अकादमी ने वर्ष 2001–02 का अपना सर्वोच्च सम्मान ''शलाका सम्मान'' देकर के सम्मानित किया। यह पुरस्कार दिल्ली हिंदी अकादमी द्वारा प्रदान किया जाता है। उन्हें 2025 में पद्मश्री से नवाजा गया। उस समय उनकी उम्र सौ वर्ष थी आज एक सौ एक वर्ष की उम्र के इस साहित्य यात्री की यात्रा थम गई। लगभग इन पर तीन सौ से ज्यादा पुस्तके लिखी जा चुकी है। हालांकि साहित्य जगत के मिथक रामदरश मिश्र अब हमारे बीच नहीं है लेकिन वह अपने पीछे हिंदी साहित्य के लिए और हिंदी पाठकों के लिए इतनी साहित्यिक वसीयत छोड़ गये हैं कि,– "वह अपने न रहने पर भी अपने वृहद हिंदी साहित्य में हमेशा जीवित रहेंगे।" हालांकि उन्हीं की एक रचना से मैं उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं जो कि अब भी प्रासंगिक है–

''बनाया है मैंने ये घर धीरे–धीरे
खुले मेरे ख्वाबों के पर धीरे–धीरे।
किसी को गिराया, ना खुद को उछाला
कटा जिंदगी का सफर धीरे–धीरे।
जहाँ आप पहुँचे,छलांगें लगा कर
वहाँ मैं भी आया, मगर धीरे–धीरे।

पता : जज कॉलोनी, मियाँपुर, जिला–जौनपुर–222002
मो. : 7800824758

बचपन के संध्या दीपक : प्रेमचंद

❑ डॉ. शिवानी कटारा

यह वृत्तांत मेरी स्मृतियों की गहराई में छिपा वह उजला पन्ना है, जिस पर समय की धूल कभी नहीं जम पाती। मेरे बचपन की आकाशगंगा में यदि कोई तारा सबसे अधिक दमकता है, तो वह है–मुंशी प्रेमचंद का साहित्य। और उस तारे की ओर मेरा ध्यान आकर्षित करने वाले थे मेरे पिता जी। वे दिनभर गाँव–शहर के रोगियों का उपचार कर लौटते, उनके दर्द बाँटते, उनकी धड़कनों को सुनते, और जब घर में कदम रखते, तो थकान से भरे शरीर के बावजूद उनकी हथेलियों में मेरे लिए सबसे अनमोल औषधि होती–प्रेमचंद की कहानियाँ। वे किताबें मेरे लिए जीवन का अमृत थीं, और पिता जी की गंभीर किन्तु मधुर आवाज उनके भीतर छिपी आत्मा को सजीव कर देती थी।

मुझे वह संध्या आज भी उतनी ही सजीव प्रतीत होती है, मानो अभी–अभी घटित हुई हो। पिता जी ने मुझे अपनी गोद में बिठाकर 'ईदगाह' सुनानी शुरू की। मेले का शोर, मिठाइयों की महक, खिलौनों की चमक–सब मेरी आँखों के सामने जीवंत हो उठा। पर जैसे ही पाँच वर्ष का हामिद अपने लिए मिठाई या खिलौना न लेकर दादी के लिए चिमटा खरीदता है, तो मेरे नन्हे मन में तूफान उठ खड़ा हुआ। मैं चौंककर बोल उठी– "पिता जी, वह गुड़िया क्यों नहीं लाया? सब बच्चे तो खिलौने ही लेते हैं।"

पिता जी ने मुस्कराकर मेरे सिर पर हाथ फेरा और कहा– "बेटी, सच्चा प्रेम वही है जो दूसरे के दुःख को कम करे। गुड़िया से दादी की खुशी क्षणिक होती, पर चिमटा उन्हें रोज का सुकून देगा।"

उनके शब्दों ने मेरे हृदय में ऐसी गहरी छाप छोड़ी कि उस दिन से मैं समझ गई–स्नेह और त्याग जीवन की सबसे बड़ी निधि हैं।

इसके बाद आई 'पूस की रात'। मैं मानो हलकू के साथ उस खेत में ठिठुर रही थी। ठंडी हवा चुभती थी, पत्तों की सरसराहट सुनाई देती थी, और हलकू का वह वाक्य– "अब तो गर्मी

मालूम हो रही है।"— मेरे मन में किसी शूल की तरह चुभ गया। अहसास हुआ किसान का जीवन ऐसा ही है। अन्न उगाने वाला भूखा सोता है, फिर भी धरती माँ का ऋण चुकाने से पीछे नहीं हटता। उस क्षण मैंने जाना कि भारत का असली गौरव उसके खेतों में, उसके पसीने से भीगी मिट्टी में है। धीरे—धीरे प्रेमचंद मेरे जीवन का हिस्सा बनते चले गए। जब मैंने 'नमक का दरोगा' पढ़ी और वंशीधर का यह वाक्य गूँजा— "कर्तव्यपालन से बढ़कर कोई धर्म नहीं।"— तो मैं भीतर तक द्रवित हो गई। यह पंक्ति मेरे जीवन का संबल बनी। तब सोचती थी, क्या सचमुच कोई रिश्वत की चमक ठुकरा सकता है। जब—जब किसी आसान और किसी कठिन मार्ग में चुनना पड़ा, तब यह आवाज भीतर से आती रही—कर्तव्य ही सबसे बड़ा धर्म है।

फिर आई 'निर्मला'। उस उपन्यास की त्रासदी ने मुझे गहरे तक विचलित कर दिया। निर्मला का जीवन मानो आंसुओं की लड़ी था, जिसे पढ़ते—पढ़ते मेरे अपने आँसू बहने लगे। उपन्यास की यह पंक्ति— "दहेज की प्रथा ने कन्या के जीवन को नर्क बना दिया है।"— मेरे ह्रदय में गूँजती रही। समझ आया कि यह केवल कहानी नहीं है, समाज का सच है। उस दिन मैंने निश्चय किया कि स्त्रियों के दुःख को कभी सामान्य न समझूँगी, उनके अधिकारों के लिए हमेशा सजग रहूँगी। तत्पश्चात मेरे जीवन में 'गोदान' आयी। होरी का सपना— "अगर एक गाय हो जाए तो जीवन संवर जाए"— पहली बार सुनकर मुझे बहुत साधारण लगा। पर धीरे—धीरे समझ में आया कि यह केवल एक पशु पाने की आकांक्षा नहीं, बल्कि किसान की आत्मा और उसके आत्मसम्मान का प्रतीक है। उपन्यास की यह पंक्ति आज भी स्मृति में गूँजती है— "होरी मर कर भी गोदान करना चाहता था, क्योंकि वही उसकी जीवन—लालसा थी।" उस क्षण मैंने जाना कि सपनों का मूल्य उनकी ऊँचाई में नहीं, उनकी सच्चाई और संघर्ष में है। और फिर 'कफन' ने मुझे भीतर तक हिला दिया। घीसू और माधव अपनी पत्नी और माँ की मृत्यु पर भी शराब पीते हैं। पहले तो मुझे तीव्र क्रोध आया, पर धीरे—धीरे समझ आया कि गरीबी मनुष्य से संवेदनाएँ तक छीन लेती है। कहानी की यह पंक्ति— "कफन के पैसों से जब तक मुँह में आग न डाल लें, चैन नहीं।"— मेरे कानों में आज भी गूँजती है। तब मैंने जाना कि परिस्थितियाँ मनुष्य का आचरण बदल देती हैं, और न्याय करने से पहले उसकी दशा को समझना चाहिए।

इसी क्रम में 'दो बैलों की कथा' सुनाई गई। हीरा और मोती की निष्ठा और वफादारी पर मैं झूम उठी और उत्साह में कह बैठी— "काश, मेरे पास भी हीरा और मोती जैसे दोस्त हों!"

पिता जी मुस्कराकर बोले— "बेटी, किताबों में हीरे और मोती छिपे हैं, वे तेरा साथ कभी नहीं छोड़ेंगे।"

उनके शब्द आज भी मेरे जीवन के साथी हैं। यही नहीं, 'शतरंज के खिलाड़ी' ने मुझे सिखाया कि जिम्मेदारी से भागना पतन का कारण है। 'प्रेमाश्रम' ने बताया कि समाज को बदलने के लिए संघर्ष आवश्यक है। 'गबन' ने लालच के विनाशकारी

आज जब मैं पीछे मुड़कर देखती हूँ, तो महसूस करती हूँ कि प्रेमचंद केवल कथाकार नहीं थे, वे मेरे जीवन—दर्शन के शिल्पकार थे। और मेरे पिता जी वह मूर्तिकार, जिन्होंने प्रेमचंद की कहानियों को मेरी आत्मा में ढाल दिया। लेकिन यह धरोहर केवल मेरे जीवन तक सीमित क्यों रहे? आज की जनरेशन के लिए भी प्रेमचंद उतने ही आवश्यक हैं। यह पीढ़ी मोबाइल की स्क्रीन और कृत्रिम चमक—दमक में उलझी है। जहाँ दोस्ती इमोजी में है, करुणा चैट में है, और उपलब्धियाँ लाइक्स और फॉलोअर्स में गिनी जाती हैं। ऐसे समय में प्रेमचंद की कहानियाँ उन्हें यह याद दिलाती हैं कि जीवन का असली अर्थ उपभोग में नहीं, बल्कि संवेदना, सच्चाई और नैतिकता में है।

परिणाम सामने रखे। 'सेवासदन' ने स्त्रियों की जटिलताओं और संघर्षों की करुण गाथा सुनाई। इन सबने मिलकर मेरे व्यक्तित्व की मिट्टी को गढ़ा, मेरी संवेदनाओं को आकार दिया।

आज जब मैं पीछे मुड़कर देखती हूँ, तो महसूस करती हूँ कि प्रेमचंद केवल कथाकार नहीं थे, वे मेरे जीवन–दर्शन के शिल्पकार थे। और मेरे पिता जी वह मूर्तिकार, जिन्होंने प्रेमचंद की कहानियों को मेरी आत्मा में ढाल दिया। लेकिन यह धरोहर केवल मेरे जीवन तक सीमित क्यों रहे? आज की जनरेशन– Gen Z के लिए भी प्रेमचंद उतने ही आवश्यक हैं। यह पीढ़ी मोबाइल की स्क्रीन और कृत्रिम चमक–दमक में उलझी है। जहाँ दोस्ती इमोजी में है, करुणा चैट में है, और उपलब्धियाँ लाइक्स और फॉलोअर्स में गिनी जाती हैं। ऐसे समय में प्रेमचंद की कहानियाँ उन्हें यह याद दिलाती हैं कि जीवन का असली अर्थ उपभोग में नहीं, बल्कि संवेदना, सच्चाई और नैतिकता में है। साथ ही, प्रेमचंद का साहित्य उन्हें उस भारत से मिलवाता है, जिसकी जड़ें गाँव की मिट्टी में हैं। 'गोदान' पढ़ते हुए खेतों की महक आती है, बैलों की थकान और किसान के सपनों की आहट सुनाई देती है। 'पूस की रात' में हलकू के साथ बैठकर वे महसूस कर सकते हैं कि ठंडी हवा का सामना करते हुए भी किसान धरती माँ का कर्ज चुकाता है। 'ठाकुर का कुआँ' पढ़कर वे समझेंगे कि पानी जैसा साधारण संसाधन भी किस तरह जातिगत भेदभाव का प्रतीक बन सकता है। 'बड़े घर की बेटी' उन्हें दिखाती है कि ग्रामीण परिवारों में रिश्तों का सम्मान और सामाजिक मर्यादा कितनी गहरी होती है।

मुझे वह संध्या आज भी उतनी ही सजीव प्रतीत होती है, मानो अभी–अभी घटित हुई हो। पिता जी ने मुझे अपनी गोद में बिठाकर 'ईदगाह' सुनानी शुरू की। मेले का शोर, मिठाइयों की महक, खिलौनों की चमक–सब मेरी आँखों के सामने जीवंत हो उठा। पर जैसे ही पाँच वर्ष का हामिद अपने लिए मिठाई या खिलौना न लेकर दादी के लिए चिमटा खरीदता है, तो मेरे नन्हे मन में तूफान उठ खड़ा हुआ। मैं चौंककर बोल उठी– "पिता जी, वह गुड़िया क्यों नहीं लाया? सब बच्चे तो खिलौने ही लेते हैं।"

प्रेमचंद की कथाएँ न केवल ग्रामीण जीवन के दुःख और संघर्ष को सामने लाती हैं, बल्कि वहाँ की परंपराओं, लोकाचार और नैतिक मूल्यों को भी जीवंत करती हैं। गाँव का सामूहिक जीवन, चौपालों की चर्चा, मेले की रौनक, बैलों की टाप, और स्त्रियों का लोकगीतों में दुःख–आनंद उड़ेलना– यह सब उनके साहित्य के पन्नों से बाहर निकलकर पाठक के चारों ओर बिखर जाता है। यही कारण है कि आज की नई पीढ़ी यदि प्रेमचंद को पढ़ेगी, तो उसे केवल साहित्यिक आनंद नहीं मिलेगा, बल्कि वह अपनी जड़ों से जुड़ेगी।

और अंततः यही प्रेमचंद का सबसे बड़ा संदेश है– साधारण जीवन में भी असाधारण आदर्श छिपे होते हैं। कोई किसान, जो अपने खेत में हाड़तोड़ मेहनत करता है, कोई स्त्री, जो अपने परिवार के लिए अपनी इच्छाओं का बलिदान करती है, कोई बच्चा, जो अपनी मासूम चाहतों को दबाकर बड़ों की जरूरत पूरी करता है– ये सब पात्र बाहर से साधारण लगते हैं, पर भीतर से वे आदर्शों के आकाश जितने ऊँचे होते हैं। शायद यही कारण है कि जब भी मैं प्रेमचंद को पढ़ती हूँ, तो मुझे लगता है कि यह साहित्य केवल बीते हुए भारत का नहीं, बल्कि आज और आने वाले कल का भी मार्गदर्शक है। Gen-Z अगर इंसानियत, संवेदना और नैतिकता की मशाल जलाए रखना चाहती है, तो उन्हें प्रेमचंद को पढ़ना ही होगा। क्योंकि प्रेमचंद मात्र कहानीकार नहीं थे– वे समाज की आत्मा के प्रहरी थे, और उनकी रचनाएँ आज भी हमारे हृदय में स्पंदित होती हैं। ◆

(लेखिका दिल्ली स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स से पीएच.डी. हैं और सामाजिक कार्यों में सक्रिय हैं)

मो. : 9205269749

बालमन और कहानियाँ

❑ भारती मिश्रा

बाल साहित्य अर्थात साहित्य का एक ऐसा समग्र क्षेत्र जहां बच्चों को ध्यान में रखकर लेखक या रचनाकार द्वारा साहित्यिक रचनाएं की जाती है। बाल साहित्य से जुड़ी रचनाओं में बच्चों के मनोरंजन के साथ–साथ उनको शिक्षा प्रदान करने की भी कोशिश की जाती है। ऐसे में बाल साहित्य में लेखन एक दुरूह कार्य भी माना जाता है। प्रख्यात कवयित्री महादेवी वर्मा ने कहा था कि बाल साहित्य की परिभाषा उत्कृष्ट साहित्य की परिभाषा से सर्वथा भिन्न है, क्योंकि यह मनुष्य की एक पूरी पीढ़ी को बनाने का कार्य करती है और इसमें बच्चों की रुचि एवं समाज के अनुकूल लिखा जाता है ताकि बच्चों में जिज्ञासा और उत्साह बना रहे।

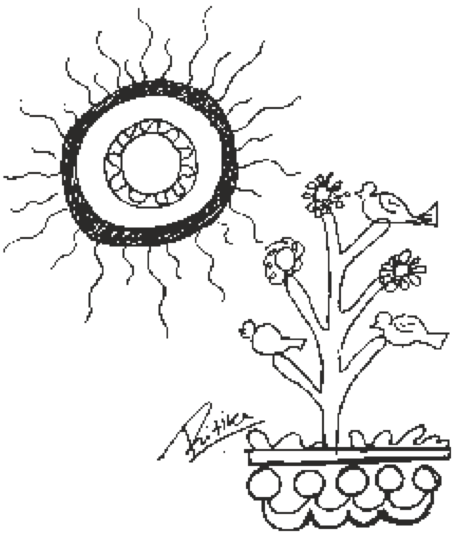

बच्चे अपने आसपास की चीजों से बहुत कुछ सीखते हैं और उनका अनुकरण भी करते हैं। वे एक सामान्य सैद्धांतिक पुस्तक के माध्यम से उतना ज्ञान ग्रहण नहीं कर पाते जितना कि सहज सरल शब्दों में रोचक ढंग से कही गई बातों से ग्रहण करते हैं। इसका कारण यह है कि बच्चों में अल्हड़पन की अधिकता होती है। वे बड़ों की तरह गंभीर नहीं होते। उनमें चंचलता भी खूब होती है जिससे सैद्धांतिक बातों को समझने में अरुचि महसूस करते हैं। क्योंकि सैद्धांतिक तथ्यों को समझने के लिए बच्चों में शारीरिक और मानसिक स्थिरता अनिवार्य है। उच्च बौद्धिक क्षमता वाले बच्चे सैद्धांतिक शिक्षा पर ध्यान केंद्रित कर भी लें मगर सामान्य बौद्धिक क्षमता वाले बच्चों को शैक्षिक या नैतिक बातों को समझाने के लिए इस प्रकार के रोचक तरीकों को अपनाना श्रेष्ठ होता है।

बच्चों को शैक्षणिक ज्ञान के साथ उनकी जिज्ञासा एवं मानसिक शक्ति को सही दिशा प्रदान करने के लिए बाल साहित्य श्रेष्ठतम माध्यम माना जाता है। बाल साहित्य में रची गई कहानियाँ, कविताएं, चित्र कथा आदि बच्चों के मन तक सारी बातें सरलता से पहुंचा देती हैं जो अमूमन वयस्क व्यक्ति सामान्य शब्दों के माध्यम से उन्हें नहीं समझा पाते हैं।

बच्चों के कोमल मन को कहानियाँ बेहद प्रभावित करती हैं। बच्चे कहानी पढ़ने–सुनने में हमेशा ही रुचि दिखाते हैं। यह नए युग की बात नहीं बल्कि बच्चों और कहानियों का रिश्ता प्राचीन समय से चला आ रहा है। पुराने जमाने में बच्चे घर के बड़े–बुजुर्गों से अलग–अलग भाव की रोचक कहानियाँ सुना करते थे। उन कहानियों के माध्यम से वे अच्छे–बुरे का फर्क समझ

पाते थे। उन्हें सामाजिक परिवेश की जानकारी मिलती थी या फिर नैतिक मूल्यों का ज्ञान होता था। पंचतंत्र की कहानियाँ हो या बालक ध्रुव, प्रहलाद, नचिकेता की कहानी। लव–कुश या फिर बाल हनुमान की कहानी। यह आज भी प्रचलित है। यह पुरानी परंपरागत कहानियाँ न जाने कितने समय से बड़े–बुजुर्ग अपने बच्चों को सुनाते आएं हैं। इसके पीछे व्यक्ति का उद्देश्य यही रहता है कि उनके बच्चों को स्वस्थ मनोरंजन देने के साथ में कुछ नैतिक सामाजिक बातें भी बताई जाएं।

बच्चों के जीवन में कहानियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। कहानियां कई रूपों में बच्चों को प्रभावित करती आयी हैं।

(1) **एकाग्रता बढ़ाने में :–** बच्चे अपनी छोटी उम्र के कारण बेहद नटखट होते हैं और उनमें शांत चित्त होकर बैठने का गुण न के बराबर होता है। ऐसे में यदि उनके मन के प्रतिकूल कार्य दिया जाए या फिर कुछ पढ़ने के लिए कहा जाए तो भी उनमें चंचलता के कारण बैठकर उनका पढ़ना मुश्किल नजर आता है। कहानी पढ़ने या सुनने से बच्चों में एकाग्रता बढ़ती है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि बाल साहित्य में कहानियाँ बच्चों की रुचि और मनोरंजन आदि को ध्यान रख कर लिखी जाती है जिन्हें बैठकर पढ़ने या शांत चित्त होकर सुनने में उनकी एकाग्रता धीरे–धीरे बढ़ती जाती है।

(2) **नई चीजों को जानना :–** कहानियों के माध्यम से बच्चे बहुत से नयी चीजों से अवगत होते हैं। एक छोटा बच्चा लिखने–पढ़ने के सामान्य तरीके से दूर होता है। ऐसे में उसे शब्द ज्ञान तथा चीजों की जानकारी देने के लिए कहानियाँ सुनायी जानी चाहिए। कहानी में आने वाले बहुत से पात्र, वस्तुएं, शब्द आदि से बच्चों की भाषा बेहतर होती है। कहानियों के माध्यम से बच्चा अपनी संस्कृति के साथ दूसरे लोगों की संस्कृति पहनावा परिवेश आदि को भी जानने लगता है। अपने परिवेश से जुड़ी कहानियों के माध्यम से बच्चों को अपने आसपास के रहन–सहन वातावरण आदि का ज्ञान होता है। लेकिन जब हम दूसरे देश की लोक कथाओं को या प्रचलित कहानियों को बच्चों को सुनाते हैं तो फिर ऐसे में वह उस देश से जुड़ी कई बातों तथा पहलुओं को कुछ हद तक जानने लगता है। कहानियों में आने वाले शब्द से बहुत सारे नए शब्दों का वाक्य प्रयोग तथा सही अर्थ भी जानने लगता है अर्थात बच्चों की शब्दावली समृद्ध हो जाती है।

(3) **भावना एवं संवेग का ज्ञान :–** बाल कहानियाँ सुनने के दौरान प्रायः हम देखते हैं कि बच्चे कहानियों की गति के साथ बढ़ते चले जाते हैं, उसमें डूबते चले जाते हैं। अर्थात् कहानी के पात्रों की संवेदना और भावना के साथ वे स्वयं को जोड़ लेते हैं। ऐसे में व्यक्ति में परिलक्षित अलग–अलग भाव एवं संवेग को बच्चे कहानियों के माध्यम से समझने लगते हैं। उन्हें रोना, क्रोध करना, हंसना आदि जैसी संवेदनात्मक क्रियाओं को जाहिर करने की जानकारी होती है। बच्चा यह समझ पाता है कि व्यक्ति में किस प्रकार के भावनात्मक पहलू होते हैं। खुशी के क्षण कौन से संवेगात्मक कारक होते हैं और खुशी को कैसे जाहिर किया जाता है। अर्थात् भावनात्मक और संवेगात्मक क्रियाओं को कैसे प्रस्तुत करना होता है इसे बच्चा कहानी तथा उससे जुड़े पात्रों के माध्यम से जान पाता है। ऐसा माना जाता है कि कहानी सुनने वाले बच्चे भावनात्मक रूप से अधिक मजबूत होते हैं तथा वे संवेग को प्रकट करने के साथ ही भावुक परिस्थितियों को संभालना भी बेहतर तरीके से जानते हैं। इस प्रकार के बच्चे सिर्फ अपना हीं नहीं बल्कि सामने वाले व्यक्ति की भावनाओं को भी अच्छे से समझते हैं। ऐसे बच्चे भविष्य में बेहतर इंसान साबित होते हैं।

(4) **कल्पना शक्ति और रचनात्मकता :–** कहानी सुनने वाले बच्चों में रचनात्मकता का विकास तीव्र गति से होता है साथ ही इनकी कल्पना शक्ति भी बेहतर होती है। कहानी सुनने के दौरान बच्चा कहानी से जुड़े माहौल या परिवेश को अपने मन में कल्पना के माध्यम से उतारता है। वह सोचने लगता है कि अमुक घर या गांव इस प्रकार का होगा। अमुक व्यक्ति ने इस प्रकार का पहनावा पहना होगा। यह भाव प्रकट करते हुए उसका मुख मंडल इस तरह का दिखता होगा आदि। जिस प्रकार एक चित्रकार किसी व्यक्ति के द्वारा बताए हुए नैन–नक्श या हुलिया को सुनकर अमुक व्यक्ति का स्केच कागज पर उतारता है उसी प्रकार छोटा सा बच्चा भी कहानियाँ सुनते हुए उससे जुड़े विभिन्न पहलुओं का आभासी चित्र अपने मन मस्तिष्क पर उकेरने लगता है। कहानी सुनते हुए बच्चा एक काल्पनिक दुनिया में खो जाता है और उस आभासी

दुनिया से खुद को जोड़ लेता है। ऐसे में अपनी कल्पना शक्ति का प्रयोग करके वह कहानी से जुड़े पात्र तथा परिवेश आदि को अपने स्तर से समझने की कोशिश करता है। इस प्रकार कहानियाँ बच्चों को उनकी समझ विकसित करने में भी मददगार साबित होती हैं। यह सभी जानते हैं कि जिसमें सोचने समझने की क्षमता अधिक होती है वह अपनी बातों को लोगों के बीच बेहतर ढंग से प्रस्तुत करते हैं और अच्छी तरह से समझा भी पाते हैं। ऐसे में व्यक्ति में समझ उत्पन्न करने के लिए भी कहानियाँ महत्वपूर्ण होती है।

(5) **नैतिक मूल्य एवं संस्कार** :— कहानियाँ बच्चों में नैतिक मूल्यों का ज्ञान कराती है साथ ही उन्हें संस्कारशील बातो एवं व्यवहार से भी अवगत कराती है। बच्चों को अपनी संस्कृति से अवगत कराने का माध्यम भी कहानियाँ होती हैं। कहानी के माध्यम से बच्चे अपनी परंपराओं को जानते हैं। कुछ कहानियाँ इतिहास से जुड़ी होती हैं। जब बच्चे को ऐसी कहानियाँ रोचक ढंग से सुनायी जाती है तो वह ऐतिहासिक पात्र या घटनाक्रम के साथ जुड़ते चले जाते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो ऐसी कहानियाँ बच्चों में मन की गहराइयों में उतर जाती है जिससे उन्हें लंबे समय तक कहानी के पात्र या अन्य चीजें को याद रहती है। फिर आगे चलकर जब वे स्कूल जाते हैं और पाठ्यक्रम में कोई सुनी—सुनायी कहानी चौप्टर रूप में मिलती है तो वह उसे आसानी से पुनः स्मरण करके पढ़ लेते हैं। पहले से जानकारी होने के कारण चैप्टर उन्हें अनजान या बोझिल नहीं लगता है। महाराणा प्रताप, रानी लक्ष्मीबाई, महात्मा गांधी, छत्रपति शिवाजी, स्वामी विवेकानंद आदि अनेकों नाम है जिन्हें बच्चे कहानियों के माध्यम से पहले हीं जान लेते हैं।

कहानियों से बच्चे नैतिक मूल्य और संस्कार भी सीखते हैं। रामायण के पात्र जब बच्चों के समक्ष शब्दों के माध्यम से रखे जाते हैं तो उनसे बच्चे बहुत कुछ नैतिक व्यवहार खेल—खेल में सीख लेते हैं। बच्चों को यदि प्रख्यात लोगों की जीवनी कहानी के रूप में सुनायी जाती है तो वे उनसे भी बेहद प्रभावित होते हैं तथा प्रेरणा लेकर भविष्य में बेहतर जीवन की नींव रखते हैं। अब्दुल कलाम, लाल बहादुर शास्त्री आदि के बचपन के मेहनत और संघर्ष को दिखाते हुए उनके जीवन के स्वर्णिम बातों को जब बताया जाता है तो उनकी कहानी सुनते हुए बच्चे वीरता, साहस, संघर्ष जैसे मनोभावों को समझ पाते हैं।

(6) **सीखने की क्षमता** :— बाल कहानियाँ बच्चों में सीखने की क्षमता को बढ़ाती है। कहानियों के माध्यम से वह नई चीजों को रुचिकर ढंग से जान और समझ पाता है जो उसके बौद्धिक विकास के लिए श्रेयस्कर है। कहानी सुनते हुए बच्चा धीरे—धीरे उसके शब्दों में कहानी के पात्र या भाव में उतरता चला जाता है। ऐसी स्थिति आने के बाद उसके अंदर यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि अब आगे क्या होगा। इस जिज्ञासा के सहारे वह कहानी को अंत तक पढ़ डालता है या फिर सुनने के क्रम में पूरी कहानी खत्म होने तक स्थिर बैठा सुनता रहता है। इससे पता चलता है कि कहानियों में बच्चों के अंदर जिज्ञासा उत्पन्न करने की भी क्षमता होती है। इन सबके अलावा बाल कहानियाँ बच्चों में नीरसता उत्पन्न नहीं होने देती है। बच्चों में आत्मीयता को बढ़ावा देती है तथा उन्हें प्रशंसनीय कार्य करने के लिए प्रोत्साहित भी करती है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में हमारे जीवन पद्धति ने बच्चों को भाव शून्य बनकर कार्य करने वाली मशीन बना दिया है। उनमें कहानियों को पढ़ने या सुनने के प्रति लगाव कम होने लगा है। ऐसे में साहित्यकारों के लिए जिम्मेदारियाँ और अधिक बढ़ जाती हैं कि वह बाल साहित्य में ऐसी कहानियाँ लेकर आएं जिन्हें पढ़ने के लिए बच्चे उतावले हों। उनमें कहानी पढ़ने—सुनने की इच्छा जागृत हो जाए। कई साहित्यकार यह मानते हैं कि बच्चों के लिए कहानियां लिखना सरल नहीं है। क्योंकि कोई भी रचनाकार बाल साहित्य में बेहतर तभी लिख सकता है जब तक वह स्वयं मन से बच्चा न बन जाए। बाल कहानी लिखते हुए बच्चों की रुचि, जिज्ञासा आदि का विशेष ध्यान रखना होता है। एक कहानी तभी सफल मानी जाती है जब वह पढ़ने में सरल हो। उसके भाव बच्चों के मन के अनुकूल हों। और इन सबसे ऊपर कहानी में बच्चों के लिए कोई न कोई सीख या मौलिक नैतिक ज्ञान हो। इस तरह की बातों को ध्यान में रखकर लिखी गई कहानियाँ हमेशा ही श्रेष्ठ मानी जाती है। क्योंकि कहानियाँ बच्चों के मन मस्तिष्क के साथ जीवन के विभिन्न पहलुओं को भी प्रभावित करती है। ◆

पता : रेलवे हण्डर रोड, पश्चिमी लोहानीपुर,
कदमकुआँ, पटना—800003
मो. : 9308162129

कमाल के पांडेय जी

❑ डॉ. लालित्य ललित

रात पांडेजी की सोते–सोते आंख खुल गई कि एक लेखक को लाखों रुपए की रॉयल्टी मिल गई और वह भी उस उम्र में जब आप अखरोट भी तोड़ नहीं सकते। केवल किशमिश खा सकते है।

यह तो वहीं बात हुई कि जब दिल्ली में बैठे हुए साहित्यकार को भी सर्वोच्च श्री का सम्मान दिया गया हो, किसी ने दबे स्वर में कहा कि छात्र हों तो ऐसा उसने अपना फर्ज निभाया।

साहित्य में इस तरह की घटनाएं बहुत है कोई किसी को ऑब्लाइज करता है तो कोई प्रयास करता है कि कोई उससे ऑब्लाइज हो जाएं।

बहरहाल अभी तो यह भी खबर आई कि उत्तरप्रदेश का एक लेखक स्व घोषित योजना के तहत प्रचारित कि अब उसने तीन सौ से ऊपर किताबें लिखने का रिकॉर्ड बनाया है, किसी ने यह भी कहा कि क्या जमाना आ गया है! जब कोई नहीं छापता तो खुद प्रकाशक बन जाओ और अपनी किताबें छापना शुरू कर दो, बेशक कोई पढ़े या न पढ़े! क्या फर्क पढ़ता है!

वैसे भी बाजार में कितने अखबार और कितनी पत्रिकाएं निकलती है और कितनी एक वंदे द्वारा पढ़ी जाती है! नहीं न तो फिर! दिमाग पर ज्यादा लोचा मत डालिए, वैसे भी देश भर में अवैध निर्माण जोरों पर है, जब टूटेगा, तब टूटेगा, पहले से काहे चिंता! ऐसे कई तरह के सवाल मन में घूमते है, उनका क्या! मन है कोई देविका गजोधर का दिल नहीं कि कोई भी चाहेगा और दरवाजा नॉक कर देगा!

वैसे मै जानता हूं कि इस सभा में भी कई सारे लोग मैरिड है लेकिन आप को शो ऐसा करेंगे कि वे जन्मजात अविवाहित है, पहाड़ है आदमी रोमांटिक हो ही जाता है, वैसे भी कैंची धाम से गुजरने पर मन में एक बार ऐसा विचार आता भी है लेकिन भगवान जी याद दिला देते है कि वत्स मत भूलो कि तुम शादी–शुदा हो और इधर–उधर देखना मना ही नहीं वर्जित भी है।

बहरहाल अपने विलायती राम पांडेय भी उन में से एक ही है, एक ही है माने टिपिकल फैमिली मैन, लेकिन जहां गए तो वहीं के हो कर रह गए, यह उनकी अदा ही नहीं निष्ठा भी है और उनका समर्पण भी है, काम के प्रति। समझें कुछ। अब पांडेय जी ने सोचा कि कितने प्रतिशत लोगों ने अपनी सर्विस से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति ली हो! एकाध को छोड़ कर, किसी का मन ही नहीं करता। पांडेय जी के वो दोस्त है सेवा राम साहनी।

उनका शगल है कि जब कुछ नहीं हो तो सेवा करने का बहाना खोज लो, घर के बाहर लंगर लगाओ और सड़क जाम कर दो, जो आएगा, उन्हें नमस्कार करेगा और आलू पूड़ी के साथ हलवा लेकर चलता बनेगा। बात भी ठीक है, पैसे का सदुपयोग भी हो जाएगा और सड़क जाम करने का उनका मंसूबा भी गायब हो जाएगा।

साहनी साहब को पांडे जी ने कहा कि लगता है आपकी चाल में कुछ खराबी है, मसलन ग्रीस तो कम नहीं हो गई!

हिन्दुस्तान में अगर यह बात किसी को तीन बार गंभीरता पूर्वक कहो तो उसके मन में भी आएगा कि बंदे की बात में दम है, यार चाल तो बिगड़ी जरूर है, हो सकता है उम्र का तकाजा हो, पांडे जी ने कहा भी कि साहनी साहब जब आप लाल टीशर्ट पहन लेते हो, गजब के लगते हो,और अच्छे–अच्छे युवाओं को पानी पिला दो, ऐसे सितम ढाते हो,साहनी साहब मान भी जाते, अक्सर प्रेमी किस्म के लोग जल्दी झांसे में आ जाते है।

इश्क जिसको हो जाए, वह उसे कम ही लगता है, ऐसा ही एक महत्वाकांक्षी लेखक को हुआ, उम्र उच्चतर शिक्षा की नजरों से देखी जाएं सत्तर पार थीं, कमरे में कई सम्मान चिन्ह थे, पर उन्हें अभी ही लगता था कि मोक्ष मिलने से पहले ये भी मिल जाए और वह भी।

ऐसे ही अनजान व्यक्ति किसी की सलाह पर पांडेय की कुटिया पधारे। पांडेय जी ने कहा कि कौन सी बड़ी बात है!

पूजा पाठ में मन लगाओ और एक महायज्ञ करना पड़ेगा जिसपर खर्चा करना पड़ेगा, उससे पहले तो बड़ा पुरस्कार वंचित है, सामने वाला झांसा राम की बातों में आ गया और फिर महायोगी की तरह उसे उपाय भी दिए गए।

लेकिन महत्वाकांक्षा लिए वह व्यक्ति चाहता था कि वह अपेक्षित राशि दे और तत्काल उसकी सम्मान वाली टिकट सुरक्षित हो जाएं।

ऐसा कभी हुआ है जो अब होगा।

पूजा पाठ भी हुई और उचित–अनुचित तरीके पर गौर किया गया और अंतरिम बैठक में यह निर्णय हुआ कि अभी भी कुछ कमी है। लिखना अलग बात है और सम्मान मिलना अलग। दोनों की कार्यशैली अलग है, व्यवधान भी है, कोई पटाकर खुश है तो कोई पटाखे बेच कर।

दुनिया में यह नियम बांध लीजिए कि कोई भी आपके काम नहीं आएगा, यदि आप हुनर रखते हैं तो सत्ता पक्ष भी आपके गुण गाएगा और विपक्ष भी आपका अदर करेगा, यह बात सर्वविदित सत्य है ।तभी रामप्यारी ने पांडेय जी को फोन किया कि चीकू कहां गया!

पांडेय जी ने कहा नए जमाने का है चीकू! ड्रैगन फ्रूट पसंद नहीं, किसी मियोनी से मिलने गया होगा, आई मीन मोमोज खाने! और यहां बैठे कितने लोगों के चेहरे पर नए जमाने वाली हवा तैर गई! तैरते तो हिंदी के लोग भी हैं अंग्रेजी फितरत में।

अब देखिए न महंगे फोन के लिए लोग क्या–क्या सितम नहीं करते! और उन्हें कह दिया जाए कि पड़ोस में सेठी साहब के यहां सत्यनारायण की कथा चल रही है जरा वहां बैठ आओ, बिल्कुल नहीं जाएंगे, और यह कह दो कि बर्गर खाओगे तो आँखें नचाने के साथ बोलेंगे कि मैं तो दो खाऊंगा।

इसका मतलब आओ समझ जाएं कि ये वह बला है जो आसानी से काबू नहीं आएगी। क्या समझे! बहरहाल जिसे मिला है वह किशमिश खाएगा और जिसे नहीं मिला, वह कसम से ऐसी हरकतें करेगा कि क्या जुगत लगाएं कि स्थानीय स्तर पर रॉक स्टार कहलाएं।

अंदर की बात! वे दिन लद गए, असलियत का फंडा क्या है! कोई नहीं जानता। बड़ा मैच फिक्स है, ये तो बड़ी अकल वाले ही विमर्श करेंगे, वैसे मंदिरों में मिसरी मिलने लगी है और गुरुद्वारों में देशी घी का हलवा, अपने को तो दोनों पसंद है।

लगे रहो आप जुगाड़ में, कुछ नहीं होगा।

शरीर स्वस्थ रहें, हाथ पांव चलते रहें,वही इनाम है,बाकी तो जाना ही है हरि के द्वार, इस बात को नहीं भूलना चाहिए। समझनी होगी बात, लेकिन हैरानी की बात तो यह है कि लोग समझते हुए भी समझना नहीं चाहते।

पांडेय जी ने सोचा कि स्वेटर पहन लूं साहनी साहब ने देखा और पूछ लिया कि अभी तो सर्दी नहीं आई! और आपने क्या किया!

पांडेय जी ने कहा तो था कि पहन लिया, पर मेरी यह चिंता बड़े मौलिक किस्म की है कि आपके पास तो सब कुछ है लेकिन आप इस अवस्था में कैटवॉक क्यों कर रहे है!

साहनी साहब जरा चौंके कि कैटवॉक कहां और कौन!

तभी चमनलाल जी ने कहा कि पांडेय जी को समझना हर किसी के बस की बात नहीं!

वाकई जिंदगी जो करती है, उसको स्वीकार कर लेना चाहिए। पांडेय जी ने आसमान को देखा और मुस्करा दिए, मुस्कराने से जिंदगी खूबसूरत हो जाती है, ऐसा वे मानते है, अब सोचिए कई लेखक इसी बात पर इतराते है कि उन्होंने इतना लिख लिया जबकि गली के चाचा लोग भी नहीं पहचानते, बाकी जो होगा वह अच्छा हो या बुरा, उसे होना ही है।

जै राम जी की। ◆

पता : बी–3 / शकुन्तला भवन, पश्चिम विहार,
नई दिल्ली–110063
मो. : 9873525397

दरख़्त

❑ श्याम नारायण सिंह, आई.पी.एस.

(यह लघु कहानी है, उस सूखते दरख़्त के दर्द की जिसकी अंगनाईं में प्राणि–जगत पलकर बड़ा हुआ। जिसकी पहुँनाईं में नवाचार मंगलगीत हुए। जिसने विकास की प्रक्रिया में नग्न होती प्रकृति के प्रतिफलन में प्राप्त प्रदूषण विष को पीकर जगत को संजीवनी दिया। पर उसी जगत की उपेक्षा उस दरख्त के अन्तर्मन को झकझोर देती है, फिर भी शिवत्व और स्थिरमति पौधा जगत हितार्थ जन्म लेकर दरख्त बनना चाहता है। साथ ही यह कहानी प्रतीक है सामाजिक विद्रूपताओं से उत्पन्न स्पन्दनहीन आधुनिक नाभिकेन्द्रित परिवारों के बुजुर्गों की उपेक्षा की, जिन्होंने पाई–पाई जोड़कर घरौंदा सजाया था। यह कहानी है पीड़ा और उपेक्षा की टीस से पल–पल टूटते बुजुर्गों की। फिर भी पुनर्भव का आलोक नई चेतना, नया संबल देता है।)

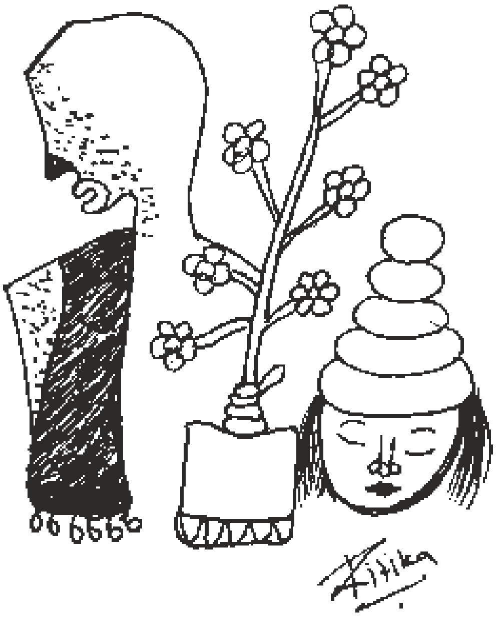

मैं दरख़्त हूँ। अभी ढ़हा नहीं हूँ। आहिस्ता आहिस्ता सूख रहा हूँ। कोमल हरी पत्तियां जिन पर गुमान था, अब मेरी साखा पर नहीं आतीं। डालियां जिन पर कनखे फूटते थे, वे भी रूठ गई हैं। मंजरी तो मुँह चिढ़ा रही है। और तो और उन पखेरूओं ने भी बसेर करना छोड़ दिया है, जिनके बच्चे मेरी कोटर में पलकर बड़े हुए। पथिक भी मेरे नीचे नहीं आते, जहाँ कभी पसीने से श्लथ विश्राम करते थे। नवाचार मंगलगीत मेरी पहुँनाईं में नहीं होते। बच्चों की लुका छुपाई, चिल्होरपत्ती सपने हो गए। प्रेमी–प्रेयसी के हास विनोद मनुहार सुने सदियां बीत गईं। शायद दूँठ हो रहा हूँ।

देख रहा हूँ। मेरे मालिक की औलादें आ रही हैं। यह क्या, दो–चार यमराज के दूत भी कुल्हाड़ी रस्सी लिये आ रहे हैं। मेरी छाया में जो पलकर बड़े हुए, मेरे फल–फूल खाये, मेरी अंगनाई में क्रीड़ाएं की वही मेरे ही नीचे मेरी बोली लगा रहे हैं। कलेजा मुँह को आ गया। अभी मरा नहीं हूँ, जिंदा हूँ। जीवन मृत्यु की आँख मिचौनी देख रहा हूँ। यही तो संसार है, प्रतिपल परिवर्तित संसार।

मेरे शरीर पर आरे चलाये जा रहे हैं। मन चीत्कार उठा पर मूक हूँ। पत्तियां भी नहीं कि उनकी फड़–फड़ाहट सुना सकूँ। मेरे शरीर का एक–एक कतरा उत्तारा जा रहा है। तने में जिजीविषा का रस धीरे–धीरे रिस रहा है। पोर–पोर क्रन्दन कर रहा है। मैं हतभागी देख रहा हूँ। मिन्नते कर रहा हूँ। है कोई जो मुक्ति दे सके। मैं जानता हूँ इस नश्वर संसार से सबको जाना है, फिर भी पीड़ा बोध तो होता ही है।

मुझे जड़ से अलग कर दिया गया है। अन्तिम आर्तनाद के साथ मैं धराशायी हो गया। यमदूत भी इस आर्तनाद से डरकर भाग खड़े हुए। अब मैं निश्चेष्ट हो गया हूँ, ज्योति स्वरूप केवल द्रष्टा। धीरे–धीरे जरूरतमंदों की भीड़ इकट्ठी हो गई है। कोई मेरी टहनी तोड़ रहा है, कोई डालियां। पल भर में कई हिस्सों में बँट गया। अब मेरे बोटे लढ़ियों में लादे जा रहे हैं। कुछ भी नहीं बचा। पहली बार मैं अस्तित्वहीन, अस्तित्वबोध से परे हुआ।

भूततत्वहीन द्रष्टा बन देख रहा हूँ। सुरसरि की रेत पर अरुण आभा पड़ रही है। नदी की सांय–सांय सुनाई पड़ रही है। मेरे भूत अंगों को समेकित किया जा रहा है। मुझे सजाकर चिता रस्म बनाई जा रही है। अरे! यह क्या, मेरे ऊपर अगर, धूप, गुग्गल, घी, चन्दन अन्हवाए जा रहे हैं। फिर श्वेत वसन आवृत मानुष का भूत देह मेरी गोद में सुलाया जा रहा है। पंडित जी बुदबुदा रहे हैं। अब मुझे जलधार दी जा रही है, चिर निद्रा में जाने के लिए। डोम के घर से आग आ गई है। भाँवरे पड़ रही हैं। डोम अग्नि को मुझे समर्पित किया जा रहा है। मैं जल रहा हूँ, अंग–अंग चिड़चिड़ चिंगारी फूट रही है। अपने लिए नहीं, मानुषभूत के लिए। कुछ ही देर में आग को आग में, जल को जल में, पवन को पवन में, आकाश को आकाश में और क्षिति को क्षिति में मिला दिया। प्रकृति से प्राप्त बीजों को प्रकृति को लौटा दिया। स्वयं की भी, मानुषदेह की भी। अब मुझमें और मानुष में कोई भेद नहीं रहा। दोनों विज्ञान स्कन्ध संस्कारयुत विशुद्ध चैतन्य। विज्ञान संस्कार अभी साथ है, शायद भव की इच्छा शेष रह गई है। बंधन रहित हुए हैं लेकिन मुक्त नहीं।

मैं दरख्त हूँ। अभी ढहा नहीं हूँ। आहिस्ता आहिस्ता सूख रहा हूँ। कोमल हरी पत्तियां जिन पर गुमान था, अब मेरी साखा पर नहीं आतीं। डालियां जिन पर कनखे फूटते थे, वे भी रूठ गई हैं। मंजरी तो मुँह चिढ़ा रही है। और तो और उन पखेरूओं ने भी बसेर करना छोड़ दिया है, जिनके बच्चे मेरी कोटर में पलकर बड़े हुए। पथिक भी मेरे नीचे नहीं आते, जहाँ कभी पसीने से श्लथ विश्राम करते थे। नवाचार मंगलगीत मेरी पहुँनाई में नहीं होते। बच्चों की लुका छुपाई, चिल्होरपत्ती सपने हो गए। प्रेमी–प्रेयसी के हास विनोद मनुहार सुने सदियां बीत गईं। शायद हूंठ हो रहा हूँ।

मेरी व मानुष की अनन्त यात्रा प्रारम्भ हुई। ज्योतिपुंज के सहारे एक–एक लोक पार कर धर्मलोक में पहुँच गए हैं। धर्म संसद बैठी है, यमराज पीठासीन हैं, चित्रगुप्त पोथी पलट रहे हैं, एक एक कर लेखा–जोखा रखा जा रहा है। कर्मों के आरोप विरचित किए जा चुके हैं। अपनी प्रतिरक्षा में चाहत का अवसर दिया गया है। मानुष गिड़गिड़ा रहा है, अपने धर्म की दुहाई दे रहा है। फिर से मानुषतन पाने की अभिलाषा कर रहा है। पर पीठासीन ने नकार दिया। अब मेरी बारी आयी। पीठासीन ने कहना शुरू किया – ऐ ! दरख़्त तू सदा ही विषकज्जल पीता रहा और जगत को संजीवनी ओजन देता रहा। शिवत्व और स्थिरमति रहा। तुम्हारा न्याय मेरे अधीन नहीं। तुम मनचाहा वर माँग लो। मेरी सारी पीड़ा काफूर हो गई, विज्ञान स्कन्ध धीरे–धीरे हटने लगे। पर विज्ञान संरकारों को समेट कर मैंने पुनः दरख्त कुल भवजाति का वर माँगा। हे देव! मुझे स्वर्ग और मोक्ष की लालसा नहीं है। लालसा है तो बस यही कि जगत का विषकज्जल पीता रहूँ और बदले में संजीवनी ओजन देता रहूँ। पीठासीन के साथ सभा चिल्लाई धन्य है! धन्य है! दरख़्त !

अनंत पथ से होते हुए एक बार फिर सोंधी मिट्टी में मेरे अंकुर फूट पड़े हैं, दरख़्त बनने के लिए। ◆

पता : वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, एटा–207001

मो. : 7905215332

पापा की प्रोफाइल

❑ अनुजीत इकबाल

पालमपुर की सुबहें किसी पुरानी कविता की तरह होती हैं, हर पेड़, हर पत्थर, हर पहाड़ जैसे कोई बिंब हो। सूरज यहां अचानक नहीं उगता, वह धीरे–धीरे सफेद धुंध की चादर को खिसकाता है, जैसे किसी चित्रकार की अंगुलियां रंगों को धीरे–धीरे उजागर कर रही हों। उस चादर के पीछे से धौलाधार की बर्फीली निस्तब्धता झाँकती है। धौलाधार, वह हिमाच्छादित पर्वत श्रृंखला है, जो पालमपुर में मौन संरक्षक की तरह खड़ी रहती है। सालों से उसी एक ही मुद्रा में–स्थिर, धवल, और अल्पभाषी।

पास बहती न्यूगल नदी की कल–कल के पास, एक घर है। न बहुत बड़ा, न दिखावटी। छत पर सजी हैं हिमालयी बेलों की कतारें, ब्रह्मकमल, बर्फ गुलाब, सिंहपर्णी और एक पुराना बोनसाई रोडोडेंड्रोन, जिसे उस घर के लोग "कुमाऊँ वाला" कहते हैं। यह घर है अभिनव गुप्ता जी का। वह साठ वर्ष के रिटायर्ड जूलॉजिस्ट यानी जीव–विज्ञानी हैं, जिन्होंने पहाड़ की लुप्तप्राय जीव प्रजातियों और चीलों के पीछे भागते–भागते जीवन गुजारा। उन्होंने अपनी जवानी के दिनों में धौलाधार की ढलानों पर पाई जाने वाली दुर्लभ तितलियों और कस्तूरी मृगों पर शोध किया था। जीवन भर उन्होंने इस बात को समझने की कोशिश की कि कैसे ऊँचाई, तापमान और मौसमी बदलाव किसी प्रजाति की संरचना और व्यवहार को बदल देते हैं। उनके औसत कद, हल्की झुकी पीठ, सफेद बाल और अधपकी दाढ़ी और झुर्रियों से भरे चेहरे पर अब भी एक खोजी चमक थी। पर, अब वे थम गए थे। उनके जीवन की संगिनी, स्वरा, बरसों पहले एक लंबी चुप्पी ओढ़कर चली गई थीं। वही स्वरा, जो सितारवादक थीं। कमरे के कोने में पड़ा वह पुराना सितार अब मौन था, पर कभी–कभी, जब घर के भीतर बहुत गहरा सन्नाटा होता है, तो अभिनव जी को लगता, एक धुन हवा में तैर रही है, जैसे स्वरा अभी भी कहीं यहीं हैं। एक राग बनकर। धौलाधार की स्थिरता में उन्हें स्वरा की आंखों की वही शांत आभा दिखती। कभी–कभी उन्हें लगता, उस हिम–रेखा के पार, कोई छाया खड़ी है, जैसे स्वरा हो, जो रोज उनके इंतजार में वहीं ठिठकी रहती है, बिल्कुल वैसी ही जैसे वो बरामदे में खड़ी, चाय का प्याला थामे उनका इंतजार किया करती थी।

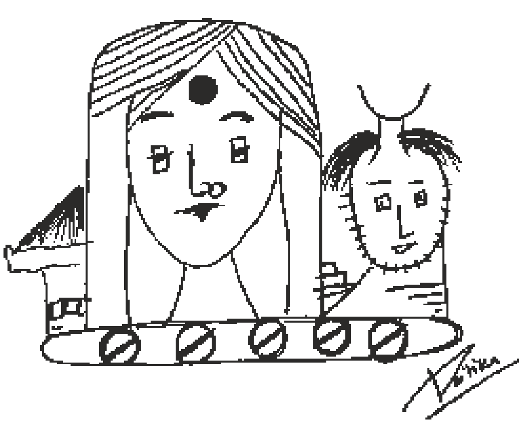

रोज सुबह छत की सीढ़ियाँ चढ़ते तो सबसे पहले धौलाधार की ओर देखते। उनके लिए ये सिर्फ पहाड़ नहीं थे, ये समय की पीठ थे, जिस पर उनकी स्वरा की स्मृतियां टिककर सांस

लेती थीं। वो हाथ में एक कप लिए पुराने बायोनॉकुलर्स से दूर नीली चीलों का वास देखते। उनकी छत पर गमलों में लगे गुलैचा, फॉक्सग्लव और नीलपुष्पी भी जैसे अपने पत्तों को थोड़ा और खोल लेते थे, जब धौलाधार खुलकर मुस्कुराती थी। अभिनव गुप्ता के लिए ये पौधे मात्र सजावटी नहीं थे, ये उनके एकांत के साथी थे, हर पत्ती, हर कली में वे जीवन की नई परिभाषा खोजते। छत पर मिट्टी की गंध, पत्तों की भाषा और पत्नी की स्मृति, सब एक साथ घुल जाया करते।

''ये पौधे बोलते नहीं, पर जब आँखें थकती हैं, तो यहीं आकर ठहर जाती हैं,'' उन्होंने कभी अपनी डायरी में लिखा था।

छत पर उनकी बैठक भी है, जिसमें लकड़ी की पुरानी कुर्सी है जहां स्वरा बैठती थी, उसके बगल में रखी हैं सूखे फूलों की हर्बेरियम डायरी और पुरानी जूलॉजी जर्नल्स की जिल्दों के बीच अब भी दबी हुई हैं, हजारों जीवों की कहानियां। शाम को, जब धौलाधार की चुप्पी घर के भीतर धीरे–धीरे उतर आती, तो वो अक्सर टैगोर की कविता पढ़ते और कभी कभी गजल सुनते हैं जगजीत सिंह की।

अनन्या, उनकी बेटी, बत्तीस वर्ष की थी। NGO में काम करती है, जमीन से जुड़ी, भीतर कहीं बहुत नर्म।

एक शाम, अनन्या पापा के साथ चाय पी रही थीं और चना मदरा खा रही थी। पापा रोज शाम को सिड्डू खाते थे, घी नहीं चटनी के साथ।

अनन्या ने कहते हुए पूछा, ''पापा आपको कभी लगता है कि कोई होना चाहिए... बात करने के लिए?''

अभिनव जी ने हँसकर कहा, ''कौन कहता है बात नहीं होती? ये पौधे , पहाड़ बहुत कुछ कहते हैं।''

अनन्या चुप हो गई। पापा अक्सर ऐसे ही हँसकर बात टाल देते थे, बात को किसी पक्षी, किसी पहाड़ी फूल या बादलों की दिशा में मोड़ देते थे। जूलॉजिस्ट होने के नाते पापा ने जानवरों और प्रकृति की भाषाएँ सीखी थीं, लेकिन इंसानी अकेलेपन की भाषा से वो अक्सर कतराते रहे। मां के जाने के बाद वो और भी चुप हो गए थे। अनन्या अब समझने लगी थी कि पापा का अकेलापन कोई शिकायत नहीं, एक आदत बन चुका था, जिसे वो छत के पौधों, सूखे फूलों और धौलाधार की चुप्पियों में सहेजते थे। पर उस रात, चुपचाप उसने एक सोशल मीडिया ऐप पर पापा की एक प्रोफाइल बना दी– "Retired zoologist, seeker of silence-Once a keeper of wild things, now tracing the quiet footprints of vanished time.''

उसने 'इंटरेस्ट' में सादगी से लिखा था–

Terrace gardening, Poetry reading, and collecting dried flowers pressed between the yellowing pages of old zoology journals-

कुछ दिनों तक कई लोगों, खास तौर पर महिलाओं के संदेश इनबॉक्स में आते रहे। कोई चटक रंगों में लिपटी शायरा थी, जो हर मैसेज में एक शेर लिख भेज रही थी। कोई अन्य, पहाड़ों की दीवानी एक ट्रैकर महिला, जो चाहती थी कि वो और "seeker of silence" साथ चलें किसी बर्फीली चोटी तक। अनन्या सब देखती रहती। हर नोटिफिकेशन, हर मैसेज पर एक हल्की सी मुस्कान, हर प्रोफाइल में पापा के लिए साथ तलाशने की उम्मीद। एक शाम अनन्या ने एक फ्रेंड रिक्वेस्ट देखी, ''माया कॉस्मिका''। नाम जाना–पहचाना लगा, प्रोफाइल खोली तो पाया कि यह तो कहीं आसपास ही रहतीं हैं और योगशाला चलाती हैं। और भी बहुत लोगों की फ्रेंड रिक्वेस्ट आ रही थी पापा को।

लेकिन जब उससे ना रहा गया, तो एक शाम हिमालयन फर्न के पौधे में पानी देते वक्त उसने कहा, ''पापा, कुछ दिखाना है, पर नाराज मत होना।'' और उसने फोन अपने पापा की तरफ बढ़ा दिया।

पापा ने चश्मा ठीक किया, और मोबाइल हाथ में लिया। स्क्रीन पर उभरा उनका ही चेहरा, सिर्फ थोड़ा और अकेला, थोड़ा और ईमानदार और कुछ कुछ बूढ़ा। पापा ने इनबॉक्स स्क्रॉल किया, पहले एक लंबा मौन साधा, फिर उन्होंने अनन्या की ओर देखा।

''तुमने मेरी तन्हाई को इतना हल्का समझा कि उसका इलाज एक ऐप से करोगी?''

अनन्या की आँखें भर आईं।

''नहीं पापा...मैं आपकी तन्हाई को बहुत गहरा समझती हूँ, इसलिए ही तो...''

उसके बाद अभिनव जी बिना कुछ कहे फोन उसको वापस कर दिया और अनन्या ने प्रोफाइल डिलीट कर दी।

दिन सरकते जा रहे थे, जैसे पुरानी घड़ी की सुइयाँ। अनन्या कुछ दिनों से किसी खास तैयारी में थी। उस शाम चाय के वक्त आखिर उसने बोल ही दिया, ''मैंने आप का नाम योग क्लास में लिखवा दिया है, पापा।''

अभिनव जी ने चौंककर देखा, फिर हल्के से मुस्कराए, ''योग? मुझे क्या जरूरत...''

''जरूरत मुझे है, पापा। कम से कम वहां कुछ लोग होंगे। हर बार कोई तितली या वायलेट डेजी ही आपकी बातचीत का साथी न हो।''

वह हँस दिए, एक थकी हुई, पर मान जाने वाली हँसी

''चलो, ठीक है... अगर तुम कहती हो।''

योग क्लास, बुंदला टी एस्टेट के पास लगती थी। वह योग क्लास चलाती थीं, वही माया कॉस्मिका जी, जिनकी फ्रेंड रिक्वेस्ट पिछले हफ्ते पापा को आई थी।

सुबह होते ही अनन्या पिता को लेकर योगशाला पहुंच गई। अभिनव जी ने चुपचाप कोने की चटाई चुनी, जहां खिड़की से धौलाधार की धुंधली छाया और टी गार्डन दिख रहे थे। वह बाहर देखने लगे।

''शरीर से पहले हम साँस को साधेंगे...'' उन्होंने यह स्वर सुना जो उनके भीतर तक उतर गया। वह पलटे। वहीं खड़ी थीं ''माया कॉस्मिका''।

चेहरा किसी पुराने ब्रह्मांडीय स्वप्न से उतरा हुआ, नीली आँखों में चुप्पी नहीं, कोई कालातीत संवाद बहता हो जैसे। गर्दन कुछ ज्यादा लंबी और मुस्कान जैसे धूप की किरण को हथेली में पकड़ लिया गया हो। उनके पहनावे में कोई आडंबर नहीं था, सिर्फ मिट्टी और आकाश के रंग और कानों में छोटे–से रुद्राक्ष, जो हर शब्द के साथ जैसे हिलते नहीं, ध्यान में उतरते थे जैसे।

''शरीर को नहीं, साँस को साधना है आपको यहां,'' वह फिर से बोलीं। आवाज में एक धीमी, लयबद्ध थिरकन थी। ऋषिकेश से यहां आईं, एंग्लो–इंडियन, गहरी नीलिमा में डूबी हुई एक रहस्यमयी स्त्री थीं माया जी। उम्र में अभिनव जी के आसपास, पर किसी और ही कालखंड से प्रतीत होतीं जैसे किसी पुराने स्वप्न से उठकर आई हों। उनके चेहरे पर एंग्लो–इंडियन विरासत की महीन छाया थी, अंग्रेजी परिष्कार और भारतीय सौम्यता का संगम। वह एक अंग्रेज महिला और एक भारतीय अध्यापक–पिता की संतान थीं, जो शांति निकेतन के विद्यार्थी थे। जीवन के पहले आठ वर्ष माया कॉस्मिका जी ने इंग्लैंड में बिताए थे, फिर भारत आ गईं हमेशा के लिए। कभी दिल्ली के रंगमंच की मशहूर नृत्यांगना रहीं थीं पर अब वे योग सिखाती थीं। बेहद शांत, सधे हुए स्वरों में बोलती थीं। कभी–कभी, गोधूलि की बेला में, उनके कमरे से सितार की मीठी तानें फूट पड़तीं, राग यमन पालमपुर की हवाओं में घुलता जाता। वह अक्सर नीले ऊनी शॉल में लिपटी रहतीं, जिस पर एक बड़ा–सा मोरपंख काढ़ा होता, जो हवा से बातें करता सा लगता। उनकी आवाज में संगीत की छाया थी।

क्लास के बाद अनन्या ने माया कॉस्मिका को अपने पिता से मिलवाया ''ये मेरे पापा हैं,'' उसने मुस्कुराते हुए कहा, ''आप के नए विद्यार्थी।''

माया कॉस्मिका जी ने क्षण भर उन्हें गौर से देखा, फिर धीरे से बोलीं– ''मैं आपको पहचान गई थी, आप वही है न जिनके प्रोफाइल में लिखा हुआ है ''सीकर ऑफ साइलेंस''

अभिनव जी की नजर अनन्या की ओर गई जिसमें एक अनकहा संकोच था। अनन्या ने उनकी वह नजर महसूस की और बेहद नर्म ढंग से चेहरे का रुख दूसरी ओर मोड़ लिया और मोबाइल की स्क्रीन पर उसकी उंगलियाँ चलने लगीं, जैसे कोई व्यस्तता ओढ़ ली हो।

कॉस्मिका जी मुस्कुराईं, बहुत हल्की, बहुत धीमी मुस्कान और तब उस क्षण की नमी बाहर खड़े ऊंचे ऊंचे देवदार की पत्तियों पर एक मौन की तरह ठहर गई। अभिनव जी ने नजरें उठाईं, उस मुस्कान में कुछ पहचाना सा था, कुछ ऐसा जो कहा नहीं गया, पर समझा गया। एक ऐसा मौन का संवाद, जो केवल अनुभवी आत्माओं के बीच घटता है।

अब अभिनव जी हर सुबह जैसे किसी अदृश्य पुल की ओर बढ़ते, एक छोटा आसमान था जो योग क्लास के नाम पर उन्हें फिर से घर से बाहर बुलाने लगा था। नई स्वेटर जो अनन्या के कहने पर भी नहीं पहनते थे, वो पहन कर, सिर पर हिमाचली टोपी जमाए, वह योगशाला की ओर निकल जाते। अनन्या उन्हें देखती, चुपचाप, कुछ विस्मित–सी, कुछ खुश सी। उसके पिता, जिन्होंने घर की बालकनी से आगे जाना छोड़ दिया था, अब घर से बाहर निकलने लगे थे और एक नए प्रकार की ताजगी लेकर लौटते। पुरानी दिनचर्या की जमी–जमी सी झील में जैसे कोई हल्का–सा पत्थर गिरा हो, और उसकी लहरें अब हर कोने को छूने लगी थीं। कुछ था जो बदल रहा था, धीरे, शांत, और फिर भी स्पष्ट जैसे पुरानी दीवारों पर धूप उतरना शुरू हुई हो।

उस दिन शाम कुछ विशेष थी, जैसे बादलों की पतली चादर के पीछे से कोई पुरानी मुस्कान झाँक रही हो। अनन्या ने बहुत दिनों से सोच रखा था और उस दिन, शाम को एनजीओ के काम से लौटते समय वह माया कॉस्मिका जी को अपने साथ घर ले आई। माया जी के पास कोई

औपचारिकता नहीं थी, कोई आग्रह नहीं, बस एक सहज स्वीकृति थी।

दरवाजा खुलते ही, अभिनव जी ने जब उन्हें देखा, तो क्षण भर को समय जैसे रुक गया था. वह कुछ कह नहीं पाए पर उनकी आँखों में जो रोशनी थी, वह किसी किशोर मन की पहली उत्सुकता–सी थी.

''आप हमारे घर...'' कहते–कहते वो रुक गए।

फिर बिना कुछ कहे, हाथ के इशारे से उन्हें ऊपर, छत की ओर अपनी बैठक में ले गए, जहां उनकी दुनिया बसती थी। छत पर शाम थोड़ी झुकी हुई थी, और गमलों में लगे छोटे–छोटे पहाड़ी पौधे सफेद बादलों की धीमी लौ में नहा रहे थे। पहाड़ी बेकनिया, रक्तबेल, पैशन फ्लावर, क्लीमैटिस, सब खिल उठे थे जैसे।

"ये देखिए," अभिनव जी ने किसी बच्चे की तरह उल्लास से कहा, "ये हिमालयी ब्लू पॉपी है, बड़ी मुश्किल से उगाई है।"

कॉस्मिका जी ने एक–एक पत्ती को देखा, जैसे वे शास्त्रीय रागों की तानें हों, और फिर धीरे से सिर झुकाया मानो उस प्रयास को नम्र प्रणाम दे रही हों।

अभिनव जी ने खुद हाथ से चाय बनाई थी उस दिन, ब्रिटिश लोगों द्वारा पसंद की जाने वाली अर्ल ग्रे ब्लैक टी, जिसमें बर्गमॉट ऑरेंज का स्वाद था। मिट्टी के कप में जब चाय परोसी गई, तो हवा में एक गहराई आ गई, कुछ पीने से ज़्यादा महसूस करने जैसी।

अनन्या चुपचाप एक कोने में बैठी सब देख रही थी। कांगड़ा की ओलोंग चाय पीने वाले पापा, ब्रिटिश चाय कब और क्यों लाए वह सोच–सोच कर मुस्कुरा रही थी। उसने अपने पिता को इतने वर्षों में इतना प्रसन्न, इतना सजीव नहीं देखा था। उनकी आँखों में जीवन की कोई पुरानी चिंगारी लौट आई थी, जो शायद कभी किताबों, पौधों, तितलियों और खोए हुए स्वप्नों के बीच रह गई थी।

उसकी आँखें धीरे–धीरे भीगने लगीं। वो कुछ नहीं बोली पर उसके भीतर कुछ पिघलता रहा जैसे वर्षों से जमी बर्फ, अचानक किसी अप्रत्याशित धूप में पिघलने लगी हो।

माया कॉस्मिका उठीं और चुपचाप कोने में पड़े सितार के सामने खड़ी हो गईं, जो अनन्या की मां का था। पुराना सितार, वर्षों से मौन, उन्हें देखता रहा। उन्होंने उसे स्नेह से उठाया। धीरे–धीरे तारों को ठीक किया, सुरों को सहलाया और राग पुरिया धनाश्री बुनने लगीं, प्रेम का, विरह का और अनकहे संवादों का राग। घर में अतीत की कोई धुन उतर आई थी, जो स्वरा अपने साथ ले गई थी। उस दिन, छत पर, चाय के हल्के धुएँ और धौलाधार के सामने दो लोगों के बीच एक चुपचाप संबंध जन्म ले रहा था, बिना वादा, बिना भाषा, सिर्फ मौन, संगीत और अनुभूति में रचा–बसा।

अभिनव जी ने उस रात डायरी में लिखा –

''आज माया ने स्वरा का सितार बजाया। बरसों बाद किसी राग ने मुझे भीतर तक छुआ। मैंने आँखें मूँद लीं थीं। कोई तस्वीर नहीं बनी, कोई स्मृति नहीं जागी, सितार बजाते वक्त वह मुझसे दूर थी, फिर भी अजीब बात है, उसकी हर धुन मुझे छू रही थी, इस उम्र में जब लोग रिश्ते गिनना छोड़ देते हैं, मैं हर पौधे, हर फूल में माया का चेहरा बुनने लगा हूं।"

अब यह एक नई, धीमी लय में बहता जीवन था, जिसमें सुबहें योग क्लास से शुरू होतीं और शामें कभी–कभी दो कप चाय के साथ छत पर किसी खामोश बातचीत में ढल जातीं। माया जी अब अक्सर उनके घर आ जातीं और सधे कदमों से अभिनव जी के साथ ऊपर छत पर चली जातीं। वहां हवा हमेशा हल्की चलती थी और गमलों में खिले पौधों के बीच जैसे कोई और ही समय पनपता था। अभिनव जी हर बार किसी नए पौधे की कहानी सुनाते–

"ये Meconopsis aculeata है," वो बड़े प्रेम से बताते, "नीला फूल आता है... मगर तभी जब इसे छुआ न जाए।"

माया जी मुस्कुराती, उनकी बात पूरी होने से पहले ही कह देती, "कुछ रिश्ते भी ऐसे ही होते हैं, अभिनव, जो बस एकांत में खिलते हैं।"

एक दिन अचानक अभिनव जी ने पूछ ही लिया, ''आपका नृत्य कैसे छूटा?''

माया कॉस्मिका कुछ देर चुप रहीं, फिर बोलीं, ''मेरा नृत्य जीवन एक शाम में ठहर गया था, जब दिल्ली से ऋषिकेश जाते समय एक सड़क दुर्घटना में मेरे पैर की हड्डियों में गहरी चोट आई। घुटने और टखने की नसें ऐसी जख्मी हुईं कि डॉक्टरों ने कहा, ''अब पूर्ण नृत्य संभव नहीं।''

कुछ देर बाद अभिनव जी को ओर देखकर बोलीं, ''मंच से उतर आई, लेकिन नृत्य भीतर से कभी नहीं गया। शरीर थम गया, पर जो भीतर थिरकता था, उसे कोई एक्सीडेंट नहीं छीन सका। फिर योग सीखा, संगीत सीखा

और अब मैं आसनों में, सांसों में, रागों में, और मौन में, अपना अधूरा नृत्य जीती हूं।

यह सुनकर अभिनव जी भीतर तक थम गए। आँखों में विस्मय था और मन किसी अनजाने दुख से भारी हो उठा। वह अच्छे से समझते थे कि किसी नृत्यांगना का नृत्य छूटना वैसा ही होता है, जैसे नदी से उसका प्रवाह छिन जाए या किसी पक्षी से उसका आकाश।

कुछ देर बाद अभिनव जी बोले (थोड़ा हिचकिचाते हुए) : ''माया, अगर बुरा न मानो तो एक बात पूछूं?''

माया, ''बिलकुल, पूछो।''

अभिनव जी, ''तुम जैसी सजीव और आत्मनिर्भर स्त्री... क्या कभी किसी के साथ... मेरा मतलब है... शादी के बारे में नहीं सोचा?''

माया जी कुछ क्षण मौन रहीं। आँखें दूर की पहाड़ियों पर टिकी हुईं, जैसे कोई स्मृति वहीं अटकी हो, फिर बोलीं, ''हाँ... सोचा था कभी। पर कुछ रिश्ते होते हैं जो समय से पहले थम जाते हैं...और कुछ ऐसे जो कभी आकार ही नहीं लेते।''

कुछ देर रुक कर वह फिर से बोलीं, ''मेरे जीवन में कुछ पल ऐसे भी आए जहां साथ की बजाय अकेले चलना ज्यादा सच्चा लगा।''

यह सब सुनकर अनुभव जी की आँखों में एक मिश्रित भाव उभरता है– आश्चर्य, सम्मान और कहीं गहरे तक छू जाने वाली करुणा। उनकी नजर माया के चेहरे पर टिक जाती है, जैसे वह उस आत्मविश्वास और टूटन की मिली–जुली परतों को पढ़ने की कोशिश कर रहे हों।

अनन्या भी सब देख समझ रही थी और कमरे से बाहर चली गई। उन दोनों को एकांत देने के लिए। सारी कोशिशें भी तो उसी की थीं। उसको अपनी मां याद आती, माया आंटी की बातों में, उनके हँसने के ढंग में, सितार की धुनों में और पापा की आंखों में लौटती चमक में।

कभी–कभी पापा, रबींद्रनाथ टैगोर की किताब हाथ में लिए अनन्या के साथ माया कॉस्मिका जी के घर चले जाते, माया जी सितार उठातीं, राग पूरिया या यमन की कोई तरंग उठती, और पापा चुपचाप उसे घंटों बैठ कर सुनते और किताब में से कविताएं सुनाते।

चाय, पौधे, संगीत, कविता और मौन, इन सबके बीच कुछ ऐसा बुन रहा था, जिसे शब्दों में बाँधा नहीं जा सकता था। यह प्रेम था या सहानुभूति, या फिर यह किसी टूटे हुए समय का धीरे–धीरे जुड़ जाना था।

उस दिन अभिनव जी ने डायरी में वापस आ कर लिखा, ''जीवन का दूसरा सूरज तेज नहीं होता, वो बस इतना करता है कि सूखी डाल फिर से हरियाने लगती है। माया आई हैं और मैं फिर से एक छोटी सी बगिया बन गया हूं।''

कुछ दिनों के बाद शाम जरा अलग थी, आसमान हल्का नीला था। देवदारों की लंबी परछाइयां धीरे–धीरे छत तक उतर आई थीं और हवा में बेकनिया के फूलों की एक अनकही खुशबू भरी थी। माया जी उस दिन आई, तो जैसे शाम अपने पूरे सौंदर्य के साथ उतर आई हो। उन्होंने रेशमी पहाड़ी पोशाक पहनी थी, जिस पर नीली कढ़ाई और छोटी–छोटी चाँदी की बूंदें टंकी थीं।

अभिनव जी उस क्षण उन्हें देखकर कुछ कह नहीं पाए। उनकी आँखों में ठहराव था, पर उस ठहराव के भीतर हलचल थी, जैसे वर्षों से सूखे ताल में एकाएक कोई पुरानी धारा लौट आई हो। वे दोनों छत पर बैठे रहे, माया जी ने चुपचाप चाय की प्याली थामी, कुछ क्षण बिना बोले बीत गए। फिर अभिनव जी ने बहुत धीमे, जैसे किसी कविता की पंक्ति गुनगुनाते हों, कहा, "माया, क्या आप जानती हैं, इन फूलों को मैं आपसे कम नहीं समझता। आपके आने से कुछ ऐसा लौट आया है, जिसे मैंने खो दिया था।

माया जी ने कोई उत्तर नहीं दिया और अपनी अंगुली से प्याली के किनारे पर एक वृत्त सा बनाया। उस वृत्त में कोई उत्तर छिपा था, जो शब्दों में नहीं था, पर पूरा कहा गया था।

आकाश पर उस क्षण एक हिमालयी मोनाल पंख पसारे गुजरा, नीली, हरी और ताम्बई आभा से चमकता हुआ जैसे स्वयं प्रकृति ने उस पल को रंग देने भेजा हो और नीचे, छत पर एक अनकहा संबंध जन्म ले चुका था, शब्दों के पार, विलंबित लय में, बस मौन की धीमी धड़कन पर टिके हुए। मोनाल की वो आवाज, मानो आकाश ने उन दोनों के लिए कोई मौन आशीर्वाद भेजा हो।

कोने में रखे पुराने वुडन केस वाले म्यूजिक सिस्टम से धीमी–धीमी गजल बह रही थी, ''कभी यूँ भी आ मेरी आँख में, कि मेरी नजर को खबर न हो...''

गजल के सुर हवा में घुलते जा रहे थे। माया जी ने थोड़े विस्मय और मुस्कान के साथ पूछा, "ये सिस्टम बहुत पुराना लग रहा है, अभी भी काम करता है?"

अभिनव जी ने उनकी ओर देखते हुए कहा, "हां, इसमें कुछ पुरानी यादें बसती हैं और कुछ नई शामें भी।"

पास ही रखे गमले में खिला था एक हिमालयन गुलबहार का फूल। माया जी उसे देर तक देखती रहीं, फिर धीमे से पूछा, "ये हर बार बस बसंत में ही खिलता है?"

अभिनव मुस्कुराए, ''जैसे कोई सुंदर शय हर मौसम में नहीं, किसी ख़ास घड़ी में ही खिलती है।"

गजल अब अगले शेर पर थी, ''....कभी दिन की धूप में झूम के कभी शब के फूल को चूम के, यूँ ही साथ साथ चलें सदा, कभी खत्म अपना सफर न हो..'' और उस पल ने जैसे कोई पुरानी कविता पूरी कर दी। जब माया जी जाने लगीं, तो सीढ़ियों से पलटकर देखा। अभिनव जी ने कोई शब्द नहीं कहा, बस अपनी हथेली में एक ब्लू पॉपी फूल लिए खड़े थे और म्यूजिक सिस्टम अब भी धीमे सुरों में उन्हें बाँध रहा था। कुछ कहा नहीं गया, फिर भी सब कह दिया गया था।

तीन चार दिन के बाद, अनन्या उस शाम पापा की किताबें ठीक करने के बहाने से उनके कमरे में आई, लेकिन मन कहीं और था। फिर उसने धीरे से पापा के टेबल पर, माया कॉस्मिका जी का भेजा हुआ एक छोटा–सा नीला लिफाफा रखा, उसके साथ एक सफेद बटरकप का फूल था। लिफाफा रखते हुए अनन्या की आँखों में वो खुशी, जो किसी गुप्त उदासी को थोड़ा हल्का होता देख पाने से आती है। कुछ दिनों से पापा ने माया कॉस्मिका जी की बातों पर मुस्कुराना शुरू किया था, खुद को वक्त देना बढ़ा दिया था और पुराना म्यूजिक सिस्टम एक बार फिर से साँस ले रहा था। कुछ देर बाद अभिनव जी का ध्यान टेबल पर गया और उन्होंने चश्मा पहनकर उसे खोला। अंदर दो टिकट थे। ''हिमालयन म्यूजिक फेस्टिवल'' के, जो त्सुगलक्खांग मंदिर परिसर, मैक्लोडगंज में होने वाला था, जहां माया कॉस्मिका सितारवादन की प्रस्तुति देने वाली थीं और ये दोनों टिकट उन्होंने ही अनन्या के हाथों घर भिजवाए थे। पढ़ते ही अभिनव जी का चेहरा जैसे खिल गया। उनकी आँखों में वही पुराना उत्साह लौट आया, जो कभी वह किसी व्याख्यान या तितली अनुसंधान के दौरान महसूस करते थे।

''माया का कार्यक्रम? और वो भी मैक्लोडगंज में?'' उनके स्वर में उत्साह था, जैसे किसी भूली हुई ऋतु का आमंत्रण आ गया हो।

उस लिफाफे में एक पत्र भी था, जिसमें लिखा था–

प्रिय अभिनव (सीकर ऑफ साइलेंस)

दो दिन बाद त्सुगलाखांग परिसर में, शांत पहाड़ियों की गोद में सितार लेकर बैठूँगी, अगर तुम्हारा मन कहे... तो चले आना।

और हां, तुम्हें पता है कि मैंने आज रबींद्रनाथ टैगोर की एक कविता पढ़ी, उसी किताब से जो तुम एक दिन घर लाए थे और वापस ले जाना भूल गए थे। इस कविता में वह कहते हैं–

''तुम, मुझे जीवन में अपने प्रेम को उसी प्रकार धारण करने दो, जैसे एक वीणा अपने संगीत को धारण करती है और अंततः अपने जीवन के साथ मैं इसे तुमको लौटा दूं''

(माया)

अनन्या ने मुस्कुरा कर कहा, ''आपको चलना होगा, पापा। मैं जानती हूँ, आपको वहां होना चाहिए, माया आंटी के लिए।''

पल भर चुप रहकर, उन्होंने अपने गले का रुमाल ठीक किया, और बोले, ''चलूंगा... क्यों नहीं चलूंगा? माया ने बुलाया है, तो मुझे जाना ही होगा।''

उनकी आवाज में वही कंपन था, जो आत्मा के भीतर बहुत देर से किसी रुकी हुई धुन के फिर से बजने जैसा होता है।

फिर कुछ देर सोचने के बाद, उन्होंने धीरे से कहा, ''धन्यवाद अनन्या,'' ''मुझे फिर से किसी की नजरों में जिंदा कर देने के लिए। प्रोफाइल बनाने के लिए नहीं...माया से मिलवाने के लिए भी नहीं...बल्कि उस हिस्से से मिलवाने के लिए, जिसे मैंने खुद कब का छोड़ दिया था।''

''पापा, कभी कभी बच्चों को भी मां बाप को जीना सिखाना पड़ता है।'' वह पापा का हाथ पकड़ कर बैठ गई। दोनों रो रहे थे।

खिड़की के पास वही पुरानी कुर्सी रखी थी, जहां मां अक्सर बैठती थीं, सूती साड़ी में लिपटी, शाम की चाय हाथ में लिए और उनींदी आँखों के साथ। अनन्या ठिठकी। ठंडी हवा ने माथा छुआ, मानो माँ ने सिर पर हाथ रखा हो।

त्सुगलाखांग की ओर अब एक यात्रा शुरू होने वाली थी, जहां सितार, प्रार्थनाओं और मौन की भाषा में कुछ अधूरी बातों को फिर से कहने का अवसर मिलने वाला था। ◆

पता : 4, आर.आर. स्टेट, नीलमथा, लखनऊ–226002

मो. : 9819906100

तलाश

❑ उदय यादव

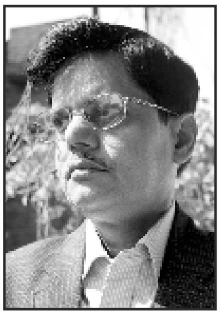

शाम को ऑफिस से लौटा तो विमला चाय का प्याला सामने रखते हुए बोली, 'आज मैंने एक नौकर रख लिया।' मुझे यह जान कर बेहद खुशी हुई। दरअसल घर के छोटे–मोटे काम के लिए एक लड़के की बहुत दिनों से जरूरत थी। मैं काफी दिन से ढूंढ रहा था, मगर कोई ढंग का मिलता ही नहीं था।

कहां है ?

'बाथरूम में अपने कपड़े धो रहा है। बहुत गंदे थे, इसलिए मैंने कहा कि पहले तू अपने कपड़े धो ले।' विमला ने बताया। वह जाने लगी, तो मैंने उसे भेजने के लिए कह दिया।

'बाबू जी, नमस्ते !'

मैं अपने कमरे में किताब पढ़ने में तल्लीन था कि मेरा ध्यान भंग हुआ। देखा, दस–बारह साल का लड़का था। घुंघराले बाल, चेहरे पर भोलापन, नेकर–बनियान पहने हुए।मैंने उसे अपने निकट बुलाया।

पास आकर सिमट कर खड़ा हो गया।

'क्या नाम है तेरा ?'

'राजू'

'कहां रहता है ?

'आगरा' मैं चौंका। यह आगरा का रहने वाला है। मैंने तो सोचा था कि अपने ही शहर का रहने वाला होगा। इसका मतलब है, यह अपने घर से भाग कर आया है। साश्चर्य मैंने, 'तू आगरा से आया है ?'

उसने हां में गरदन हिला दी।

'तू घर से भागकर आया है ? मैंने फिर सवाल किया। कोई उत्तर नहीं....। गरदन झुकाये चुपचाप खड़ा रहा। जैसे सुना ही न हो। मुझे बड़ा अजीब लगा। तभी विमला आ गयी। उसकी तरफ देखते हुए बोली,' ठीक है न ?

'ठीक तो है, मगर यह अपने बारे में कुछ बताता ही नहीं। आगरा का है, आगे कुछ नहीं। लगता है, घर से भाग कर आया है। मैंने कुछ खीझे हुए स्वर में कहा।

'रहने दो, क्या करोगे जान कर।' विमला ने बात टालने की कोशिश की। वह इस बात से

खुश थी कि एक नौकर मिल गया, जिसकी उसे काफी दिन से तलाश थी। वैसे हमारे घर में कोई खास काम नहीं हैं हम मियां–बीबी दो ही प्राणी हैं। कहने को दो कमरे का पोर्शन है हमारे पास, मगर हम दोनों का खाना–पीना, उठना– बैठना सब कुछ एक ही कमरे में होता है। लेकिन विमला को कभी –कभी लगता कि कोई नौकर रख लें। बाजार से सब्जी बगैरा लाने, घर कोई मेहमान आ जाय तो चाय–पानी देने के लिए कोई होना चाहिए। मुझे उसकी बात इसलिए ठीक लगती कि इस बहाने विमला को बात करने के लिए कोई साथी मिल जायेगा। मेरे ऑफिस जाने के बाद दिन भर अकेली रहती है। हमारी शादी को कई साल हो गये। पहले बच्चे को लेकर दोनों बहुत सोचते थे। विमला बहुत परेशान रहती थी। मगर डॉक्टरों ने जब पूरी संभावना से इनकार कर दिया, तो फिर उस तरफ सोचना ही बंद कर दिया। कोई बच्चा गोद लेने का भी विचार आया, मगर यह बात विमला को जंची नहीं। उसका एक ही तर्क था कि गोद लिया बच्चा पता नहीं कैसा निकले। भगवान को जब यही मंजूर है, तो हम ऐसे ही ठीक हैं। खैर...!

'तुम नहीं जानतीं। अगर घर से भाग कर आया होगा, तो किसी दिन हम मुसीबत में फंस सकते हैं।' मैंने उसे समझाना चाहा।

'मुसीबत कैसी, काम करेगा तो पैसे लेगा। खाना–कपड़ा देंगे ही। फिर कैसी मुसीबत?' विमला ने तर्क दिया।

'अरे, तुम नहीं समझ रहीं। आजकल चाइल्ड लेबर के खिलाफ सरकार ने बहुत सख्ती की हुई है। कई एन जी ओ यही काम कर रहे हैं। अगर उन्हें खबर हो गयी, तो किसी भी दिन पुलिस को लेकर आ धमकेंगे।' मैंने समझाना चाहा। लेकिन विमला सुनने को तैयार न थी।

राजू काम करने लगा। काम बड़े मन से करता। 'जी मैम सा' या 'आया बाबूजी' शब्दों का इस्तेमाल इस तरह करता मानो खानदानी नौकर हो। शायद विमला ने सिखाया था। बाजार से सब्जी लाना और घर में किसी चीज की जरूरत होने पर तत्काल उठा कर देना ही उसका काम था। कुछ सामान लेने भेजो, तो लौट कर एक–एक पैसे का हिसाब देता। हम दोनों को ही उसका स्वभाव अच्छा लगा। इसीलिए विमला उसके खाने–पीने का भी पूरा ध्यान रखती। उसे काम करते पूरा महीना हो गया था, मगर किसी शिकायत का उसने मौका नहीं दिया। विमला ने कई बार मुझसे कहा, 'देर से मिला, मगर बहुत अच्छा नौकर मिला है। बस, एक ही चिंता है कि कभी काम छोड़ कर न चला जाय।'

एक दिन वही हुआ, जिसका डर था। मैं शाम को ऑफिस से घर लौटा तो विमला परेशान दिखी। उसने बताया कि राजू दोपहर का निकला है और अभी तक लौटा नहीं। पता नहीं, कहां चला गया ?

'अपने घर तो नहीं चला गया ?' मैंने शंका जाहिर की। घड़ी देखी तो शाम के सात बज रहे थे।

'जाना तो नहीं चाहिए। उसने महीने के पैसे ही नहीं लिये। जब मैं देने लगी तो उसने कहा' मैम साब, आप ही रख लो । बाद मैं ले लूंगा।' उसके बाद उसने मांगे भी नहीं। विमला ने बताया। मुझे चिंता होने लगी, कहीं कुछ हो तो नहीं गया उसके साथ। आजकल शहर में ट्रैफिक इतना बढ़ गया है कि आम आदमी का चलना दूभर है। पैदल आदमी तो चल हीं नहीं सकता। आये दिन दुर्घटनाएं होती रहती हैं। फिर राजू के पास तो मोबाइल भी नहीं है। अब उसे कहां ढूंढने जाएं।

मैं यह सब सोच ही रहा था कि तभी राजू आ गया। थोड़ा परेशान और रुआंसा नजर आ रहा था। उसे देखते ही विमला दौड़ी– 'कहां चले गये थे राजू ?' लेकिन उसने सिर्फ विमला की तरफ देखा और चुपचाप एक तरफ बैठ गया। मैंने थोड़ा तेज आवाज में पूछा',' बताते क्यों नहीं, कहां गये थे, हम लोग तो परेशान थे। अगर जाना ही था, तो बता कर जाते।'

जब कुछ उत्तर नहीं दिया तो मैंने गुस्से में उसके एक चांटा मार दिया। साथ ही मैंने चेतावनी भी दी कि आगे से कहीं जाया करो तो बता कर जाया करो।

दूसरे दिन वह पहले की तरह प्रसन्न था और दौड़–दौड़ कर काम कर रहा था। जैसे उसके साथ कुछ हुआ ही न हो। हर आवाज पर, आया बाबू जी...की गुहार। विमला उसके लौट आने पर खुश थी। उसका कुछ और ध्यान रखने लगी। कुछ बनाती तो पहले उसे ही चखाती। 'राजू, जरा चैक करके बताओ, कैसी बनी है ?'

राजू विमला के प्यार से इतना खुश था कि हर समय उसके पास ही रहता। लेकिन कभी–कभी उसी तरह गायब हो जाता। लेकिन जल्दी लौट आता। जब लौटता, तो खोया–खोया सा रहता, बेहद उदास लगता। पूछने पर कभी कुछ नहीं बोलता। उसकी उदासी अबूझ पहेली बनी हुई थी, जिसे हम समझ ही नहीं पा रहे थे। लेकिन यह तो साफ था

कि कोई ऐसी बात है, जिसे वह बताना नहीं चाहता। इसलिए मैंने उससे पूछना छोड़ दिया।

लेकिन उसे उदास देख कर विमला उससे जरूर पूछती, मगर बहुत प्यार से, 'राजू, घर की याद आ रही है? तुम्हारे घर में कौन–कौन है? लेकिन वही चुप रहता, कुछ न बोलता। विमला ने एक दिन पूछ लिया,' क्या मां की याद आ रही है? मां का जिक्र आते ही वह फूट–फूट कर रोने लगा। विमला समझ गयी कि राजू मां को लेकर ही परेशान रहता है। उसने झटके से अपने सीने से लगा लिया। वह भी उसे रोते देखकर उदास हो गयी। उसे यह तो लग गया कि इसे मां की याद सताती है। लेकिन उसने कुछ बताया नहीं, इसलिए ज्यादा कुरेदना उसने ठीक नहीं समझा। यह भी साफ हो गया था कि घर की बात उसे प्रिय नहीं लगती। कुछ ऐसा है, जो वह बताना नहीं चाहता।

इसी तरह छह महीने गुजर गये। वह बीच–बीच में गायब हो जाता, लेकिन दो–तीन घण्टे में लौट आता। हम इससे संतुष्ट थे कि वह जाता है तो लौट आता है।

उस दिन मैं अपने बॉस को छोड़ने बस स्टैण्ड गया था। उन्हें अचानक दिल्ली जाना पड़ रहा था। ट्रेन में रिजर्वेशन न मिल पाने के कारण वे ए सी बस से दिल्ली जा रहे थे। मैं उन्हें बस में बैठा कर जैसे ही मुड़ा, मेरी नजर अचानक राजू पर पड़ी। वह एक बस की तरफ बढ़ रहा था। पहले तो सोचा, राजू नहीं हो सकता। उसका यहां क्या काम? लेकिन नजदीक जाकर देखा तो राजू ही था। उसकी आंखें भीड़ भरी बस में किसी को खोज रही थीं। वह उस बस से उतरा तो दूसरी बस में चढ़ गया। इस तरह वह बस में चढ़ता और कुछ क्षण बाद ही उतर आता। इस क्रम में उसने कई बस देख डालीं। वह अपने आप में इतना खोया हुआ था कि उसका ध्यान मेरी तरफ गया ही नहीं, जबकि मैं उसके एकदम पीछे था। मेरे दिमाग को एक ही सवाल परेशान कर रहा था कि राजू आखिर किसे ढूंढ रहा है। अंत में वह निराश होकर हारे हुए जुआरी की तरफ थका–थका सा बस स्टैण्ड के गेट की तरफ बढ़ने लगा। बेहद निराश और दुखी।

'राजू....!' मैंने उसे आवाज दी। आवाज सुन कर पलटा तो मुझे देखते ही बुरी तरह सकपका गया। जैसे रंगे हाथों पकड़ा गया हो। एकदम से कांपने लगा। चेहरा फक् पड़ गया। मैंने उसे तत्काल संभाला, 'नहीं बेटा, परेशान न हो। चलो, घर चलते हैं।' मैं उससे वहां कुछ पूछना भी नहीं चाहता था। जानता था कि कुछ बतायेगा नहीं।

घर पहुंचते ही उसे देख कर विमला बोली, 'अरे, यह आपके साथ है। मैं परेशान थी कि राजू दिख नहीं रहा। इसके लिए मिठाई निकाल रखी थी। आज मंदिर गयी थी। फिर वह मिठाई और पानी ले आयी। मैंने एक पीस उठाया और राजू से भी कहा तो उसने मिठाई ले ली। लेकिन खायी नहीं, हाथ में ही लिए रहा।

तब मैंने उससे बस स्टैण्ड जाने की बाबत पूछा तो रुंधे गले से बोला, 'बाबू जी, मैं अपने घर जाऊंगा।'

'हां हां..तुम्हारा मन है तो जरूर जाना। लेकिन यह तो बताओ कि बस स्टैण्ड क्यों गये थे..?

'अपनी मां को ढूंढने।' इतना कह कर वह रोने लगा।

'मां को ढूंढने'— मैं और विमला दोनों चौंके। तो हर बार मां को ढूंढने के लिए ही घर से जाता था। ओह, हम इसकी परेशानी समझ ही न सके। मुझे दुख हुआ।

विमला से उसका रोना नहीं देखा गया। उसने उसे उठाया और अपने आंचल से उसके आंसू पोंछते हुए बोली,' नहीं बेटा, रोते नहीं हैं। फिर उसे लेकर अंदर चली गयी। लेकिन यह सवाल बार–बार सिर उठा रहा था कि इसकी मां के साथ क्या हुआ।

बाद में विमला को उसने सब कुछ बताया कि उसके पिता शराबी हैं। बात–बात पर मां को पीटते थे। उसकी गली में सभी सफाई कर्मचारी रहते थे, जिनमें से ज्यादातर शराब पीते थे। गली के ज्यादातर लड़के आवारागर्दी करते रहते या रिक्शा चलाते। मां मुझे पढ़ाना चाहती थीं, ताकि गली के लड़कों जैसा न बनूं। लेकिन पापा कहते थे कि किसी दुकान पर काम कर। चार पैसे कमा कर ला। मां वर्षों से यह सब सहन कर रही थी, लेकिन जब मां से यह सहन नहीं हुआ तो एक दिन अचानक घर छोड. कर कही चली गयी।

उसे एक दिन पहले की धटना याद है। बाबा साहब का जन्म दिन था। मां उसे लेकर शहर के मुख्य चौराहे पर गयी थी। वहां दायीं तरफ बाबा साहब की विशाल मूर्ति लगी है। मूर्तिस्थल झण्डियों से सजा हुआ था। चौराहे के चारों तरफ जाने वाली सड़कों पर भव्य गेट सजाये गये थे। चारों तरफ लोगों का हुजूम था। जैसे मेला लगा हो। बच्चे, बूढ़े ,जवान सब बेहद खुश लग रहे थे। मूर्ति के बगल में बैठी गायक मंडली बाबा साहब के बारे में गाने गा रही थी। एक राजू की उम्र का ही लड़का बहुत अच्छा गाना गा रहा था। उसके बाद गाना बंद हुआ और कुछ लोग भाषण देने लगे।

सब लोग यही कह रहे थे कि हमें अपना सम्मान पाने के लिए अपने बच्चों को पढ़ाना होगा। शिक्षा ही वह हथियार है, जिसके बल पर हम अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ सकते हैं।

उसने मां की तरफ देखा—मां एकटक मूर्ति की तरफ देखे जा रही थी। उसके चेहरे पर अजब चमक थी। फिर उसकी ओर मुड़ कर बोली,' देख राजू, बाबा साहब क्या कह रहे हैं। राजू ने उधर देखा तो उसकी कुछ समझ में नहीं आया। मूर्ति तो चुप थी। लेकिन मां कह रही थी, 'बाबा साहब कह रहे हैं— राजू, तुम्हें खूब पढ़ना है। पढ़ कर तुम्हें बड़ा आदमी बनना है।' फिर मां ने पूछा, तुम पढ़ोगे न? उसने हां में सिर हिलाया। यह देख कर मां को बहुत अच्छा लगा। लेकिन उसने अपने अंदर ही अंदर तय किया कि मुझे पढ़ना जरूर है। बड़े होकर ऐसे ही मूर्ति के बगल में खड़े होकर भाषण भी दूंगा। लौटते समय मां ने उसे आइसक्रीम भी खिलायी।

घर पहुंचे तो पापा बहुत गुस्से में थे। घुसते ही पूछा, कहां गये थे ? राजू ने खुश होकर बाबा साहब के बारे में बताया। इस पर उन्होंने चीखते हुए मां के गाल पर चांटा मारा और कहने लगे— बाबा साहब देते हैं तुझे रोटी.........मैं यहां भूखा बैठा हूं और तू मस्ती कर रही है।' वह यह देखकर एकदम घबरा गया और डर कर रोने लगा था। मां कुछ नहीं बोली। चुपचाप जाकर खाना बनाने लगीं।

उसे याद है जिस दिन मां गयी थी, उस दिन सुबह उन्होंने अपने हाथों से बड़े प्यार से खाना खिलाया था। वे खाना खिला रही थी और सिर्फ एक ही बात कहे जा रही थी। राजू, तू पढ़ना जरूर। तुझे अपने बाप की तरह नहीं बनना। मैं चाहती हूं कि तू पढ़—लिखकर बड़ा आदमी बने। तुझे पढ़ने के लिए कहीं काम भी करना पड़े तो करना। काम करना बुरा नहीं होता। उसने देखा तो मां की आंखों से लगातार आंसू बहे जा रहे थे। मां को रोते देख कर वह भी रोने लगा था। उसने बार—बार पूछा कि मां रो क्यों रही हो, मगर मां ने कुछ नहीं बताया। उसे एक ही बात का अफसोस है कि जब मां घर से गयीं, तो वह घर पर नहीं था। उसे लगता है, अगर वह घर पर होता तो शायद मां न जाती। उसकी कहानी सुन कर विमला का दिल भर आया। उसकी आंखों से भी आंसू बहने लगे। दोनों रो रहे थे। विमला ने उसे अपने सीने से लगा लिया।

उसके बारे में जान कर मैं भी दुखी हो गया। राजू को उसने खाना खिला कर सुला दिया था। हम दोनों यही विचार करते रहे कि इसकी मदद कैसे की जाए। तभी विमला ने कहा, क्या ऐसा नहीं हो सकता कि राजू को हम अपना बेटा मान लें। उसे पढ़ाये— लिखायें। विमला ने जैसे मेरे मुंह की बात छीन ली। मैं भी तो यही सोच रहा था। लेकिन कहा इसलिए नहीं कि पहले बच्चा गोद लेने से विमला इनकार कर चुकी थी।

'लेकिन राजू तैयार होगा?' मैने विमला की ओर देखा। उससे पूछते हैं, अगर मान जाता है तो मुझे बेहद खुशी होगी। अगले दिन नाश्ते के समय मैंने राजू से पूछा, तुम्हारी मां चाहती थीं कि पढ़ो और बड़े आदमी बनो। हम भी चाहते हैं, तुम खूब पढ़ो। और देखना, एक दिन तुम जरूर बड़े आदमी बनोगे और अपनी मां का सपना पूरा करोगे।

मेरी बात सुन कर उसकी आंखों में चमक आ गयी। वह मेरी ओर जिज्ञासा से देखने लगा। जैसे पूछ रहा हो कि यह होगा कैसे। मैंने बात आगे बढ़ाई।

राजू, तुम्हें कोई एतराज न हो तो तुम हमारे साथ रहो। हम तुम्हें अपने बेटे की तरह पालेंगे। तुम्हें खूब पढ़ायेंगे। तुम्हें कोई परेशानी नहीं होगी।

'हां, हम भी चाहते हैं, तुम अपनी मां का सपना पूरा करो। मैं तुम्हें मां की कमी कभी नहीं खलने दूंगी।' विमला ने बड़े लाड़ से कहा। राजू विमला का प्यार पाकर पहले से ही बहुत खुश था। वह राजी हो गया। बस, एक ही शंका थी, कभी इसके पापा आ गये और अपने बेटे को ले जाने लगे तो..?

नहीं बाबू जी, वे कभी नहीं आयेंगे। वे तो मुझसे कहते थे, तेरी मां मर गयी, तू भी मुझे अपनी शक्ल मत दिखा। मुझे अब दूसरी शादी करनी है। लेकिन मुझे लगता था,मेरी मां मरी नहीं हैं। एक ने कहा कि तेरी मां मथुरा चली गयी है, इसीलिए मैं उन्हें ढूंढने यहां आ गया।

मैंने सोच लिया, आगे जो होगा, देखा जायेगा और अगले ही दिन मैंने उसका एक स्कूल में एडमीशन करा दिया। ◆

पता : ए—408, शिवा गार्डेन अपार्टमेंट, डेंटल कालेज के पीछे, एसकेडी अकेडमी के पास, वृंदावन कॉलोनी, लखनऊ
मो. : 9415754483

फर्ज

❑ पूनम पांडे

इला और महेश दंपति हैं। एक छोटे से कस्बे में रहते हैं। इन्होंने प्रेम विवाह किया है। दोनों समझदार और सुलझे हुए हैं। यह दोनों ही सेकेंडरी विद्यालय में अध्यापन करते हैं। विवाह के बाद यहां इस जगह पर घर लेकर रहते हुए उनको चार साल हो गये हैं। वह दोनों ही अपने काम के लिए ऐसे समर्पित हैं। ऐसे समर्पित कि उनके विषय के शब्द और पाठ उनके चेहरे पर ही मुखर होते रहते हैं। कोई भी दूर से देखकर बता देगा कि यह दोनों शिक्षक हैं।

अब इला इकतीस साल की ऊर्जावान युवती है। उसका पीहर यहीं है। इसी कस्बे से बीस किलोमीटर दूर लालपुर में उसके माता–पिता रहते हैं। इला बहुत ही व्यावहारिक है और धरातल पर रहती है। अब उसका जो यह दो कमरे का छोटा सा मकान इस फूलगंज नामक बस्ती में है। यह इला की नजर में काफी है। बहुत बडे बंगले का झंझट उसे भाता ही नहीं है। वह ऐसी ही है। सरल और सहज। इसलिए तो महेश को कॉलेज में पहली मुलाकात में भा गई थी।

इला को भोग–विलास आडंबर कभी भी पसंद नहीं थे। इसलिए इला ने अपने सीधे–साधे जीवन को न केवल खुशी और आनंद से स्वीकार किया था। बल्कि वह उसका अभिवादन करती रही थी। वह हर रोज जिस खिड़की से सुबह का सूरज देखती थी। और उसमें हर दिन एक नयापन पा ही लेती थी फिर ताजगी और उमंग से भर जाती थी।

पति महेश तो हर समय अपने हिन्दी विषय के रस में यों डूबा रहता है जैसे कि कविता, कहानी, निबंध, रिपोर्ताज, एकांकी यह सभी उसकी सांसों की स्थायी रंगत ही बन गई हो। उधर इला, गणित की अध्यापिका है। जैसी बड़ी सोच वैसा ही कद, सचेत व सधा हुआ हर कदम। अपनी नियत दिनचर्या में पटु–प्रवीण।

इला की आंखों पर अंकगणित, बीजगणित के सूत्र हमेशा थिरकते रहते, इस कारण कोई

स्कूल में भी खाली समय में कोई भी उससे आलतू–फालतू बात करने का साहस न कर पाता और अगली बार उससे मन की बात कह लेने का संकल्प कर आगे बढ़ जाता। मगर अगली बार वह पल वह बेला कभी आती ही नहीं थी। इला हमेशा ही धीर–गंभीर रही है। शायद इस कारण भी पुरा–पड़ोस से ज्यादा गपशप नहीं। बेकार, बेमतलब की ही ही हा हा उसे पसंद ही नहीं। कहने को अपनी कॉलोनी में चेहरा देखकर नमस्कार और क्या हालचाल जैसे संवाद का आदान– प्रदान होता रहता है।वह स्कूल से लौटती है तो खूब चहल–पहल रहती है, उसकी कॉलोनी में सब्जी वाला राधे अपना ठेला ठेलकर आता जाता रहता है। समोसे और कचौरी वाला पवन भी चक्कर लगाता है। मूँगफली, चना, रेवड़ी वाले के आसपास भी बच्चे बच्ची दस या बीस का नोट लेकर मंडराते ही रहते हैं। कभी–कभार कोई अड़ोसन–पड़ोसन तेजी से चलकर दही या मट्ठा लेकर अपने घर को भागती हुई हांफते हुए हालचाल पूछ लेती है। इला समझ जाती है कि दो बज रहे हैं। लंच करते हुए इनको दही या छांछ की याद आ गई है। वह भी हंसकर, झुक कर चटपट औपचारिक नमस्कार कर देती है और आगे बढ़ जाती।

इला समय की गति खूब जानती है। कस्बे में रहती है मगर मनोविज्ञान परखती है। इसलिए इन सारी भावनाओं और दुनियादारी की इल्लतबाजी से हाथ मिलाकर भी कभी अपना दिल–जिगर नहीं मिलाती। वह भली और उसका स्कूल भला। बात भी सही है कि इला को सोमवार से शनिवार इसके अलावा कोई होश नहीं रहता। गणित विषय को तो वह इंद्रधनुष कहती और उसके सातों रंग उसके आसपास लहराते। यही वजह थी कि कभी–कभार महेश को वह अपने से अधिक कवि लगने लगती थी। इन सबके साथ भी इला आसपास भी सभी को मन ही मन प्रिय तो थी ही। शायद उसके मन में कोई गाँठ न थी। कोई बदले की भावना नहीं। इसीलिए। मन में सबके लिए सद्भाव था। जो बगैर बोले ही संप्रेषित हो जाता था।

इला के मन का बगीचा आशा और उम्मीद के फलों से हरा–भरा ही रहता था। वह अपनी सात साल पुरानी सूती साड़ी को भी इस तरह प्रेस करती थी मानो आज ही खरीदी है और पहली बार ही पहनी जा रही है। उसके दिन इसी तरह गुजरते रहते हैं। एक के बाद दूसरा मौसम आ जाता है। इन सभी मौसमों के साथ विवाह का मौसम भी घुल–मिलकर चलता है। दूर कहीं न कहीं से बैंड–बाजे की आवाज अक्सर सुनाई दे जाती थी।

अब विवाह का सीजन आरंभ हो रहा था। इला को भी एक निमंत्रण आया था। इसी कस्बे में लेकिन यहां से लगभग सात–आठ किलोमीटर दूर बिल्कुल दूसरे छोर पर रहती थी इला की बचपन की सखी। सखी की ननद का विवाह था। इला से वचन ले लिया था कि शनिवार की शाम को इला आयेगी। उसके बाद रविवार को विवाह है। इसलिए सोमवार की सुबह विदाई के बाद ही जायेगी। इला के लिए बहुत ही सहूलियत थी। वह सुबह यहीं से सीधा अपने स्कूल जा सकती थी। विदाई तो सुबह चार बजे ही हो जायेगी। इसलिए इला को जरा भी दिक्कत नहीं थी। महेश ने उसे अकेले ही जाने दिया। महेश का कहना था कि बेफिक्र होकर आनंद मनाओ मैं अपना ख्याल रख लूंगा। वहां पर सहेली सुधा की भी मदद करना।

इला शनिवार को स्कूल से ही सीधा सुधा की जमजम कॉलोनी की बस में बैठकर सुधा के यहां चली गई। उसके घर के बगल में पांच सौ गज का एक बड़ा प्लाट खाली था। वहीं विवाह समारोह हो रहा था।

इला दूर से ही सब सजावट देख रही थी। वह जैसे जैसे पास आती गई सजावट उसकी आखों से होकर दिल में समाने लगी।क से बढ़कर एक मंहगे फूलों से गजब का मंच सजाया गया था। वहीं पर काफी रस्में होने वालीं थीं। इला तो इस तड़क–भड़क के माहौल में एकदम ही हक्की बक्की सी रह गई थी। खाने–पीने के लिए एक से बढ़कर एक चीजें थीं। मिठाई की तो गिनती ही नहीं थी। इला का वहां खूब स्वागत–सत्कार हुआ। खूब लाड–प्यार से उसकी सखी सुधा ने उसकी आवभगत की। सोमवार की सुबह करीब छह बजे वह विदाई लेकर विवाह के घर से बाहर आ गई। अब केवल सड़क थी। सपाट सड़क। मगर इला अब वह पहले वाली इला नहीं रह गई थी। अब वह काफी बदली बदली सी थी।

सुबह–सुबह की विदाई के बाद उसको सुधा ने बहुत ही प्यार से दो चांदी के सिक्के और साडी उपहार में दिये थे। उसे आज रुकने की भी बहुत मनुहार की। उसके लिए सहेली ने एक कमरा भी खाली करवा दिया था। सुधा ने उसके लौटने की व्यवस्था के लिए भी पूछा था।

मगर इला इतनी भी अशिष्ट नहीं थी। उसने बेकार किसी को परेशान करना सीखा ही नहीं था। इसके अलावा, उसने सुधा की थकान उसकी बोझिल आखें ताड़ ली थी। इला ने झूठ मूठ कह दिया कि उसके लिए एक चौपहिया वाहन आ रहा है। वह खुद चली जायेगी। ऐसा नहीं था कि इला ने आज तक शादी–विवाह के समारोह देखे ही नहीं थे, खूब देखे थे। उसकी यह सहेली भी एक किराना दुकानदार के घर विवाह करके गई थी। मगर उसके बाद अगरबत्ती की एजेंसी, चावल का लाइसेंस आदि आदि करते हुए उसने करोड़ों की संपदा हासिल कर ली थी।किसी जमाने में वह इला के महंगे सूट पहनती थी। आज इला के परिधान उसके मंहगे जूते चप्पल के बराबर भी नहीं थे। इला को आज भी वह जमाना याद है। सुधा उसके पास अक्सर आती। उससे अनुनय विनय करती कि अपनी चप्पल और सूट पहनने को दे दो। इला उस पर करुणा बरसाती। कहती कि, मेरे पास तो यह साधारण से कपड़े है सुधा। यह देखो। ''तब सुधा अपनी हवाई चप्पल और मैक्सी उतारकर उसके साधारण सूट और सैंडल पहनती। और कहती कि देखो इला। यह सब मेरे लिए शाही परिधान से कम हैं। मैं इनमें राजकुमारी लग रही हूं।''

और आगे यह भी कहती कि देखो इला तू मेरी सांता क्लाज है। ''इला उसकी मासूमियत पर दिलो जान से फिदा हो जाती थी। सुधा जब भी उसके घर आती किसी सुरक्षित भाव से और सुकून से भर जाती थी। एक बार सुधा ने कह भी दिया था कि,'' इला तेरे घर पर तेरी बुआ है और तेरी दादी है। तू हमेशा उनकी बात मानकर सही मार्ग पर चलती है।न गलत भाषा बोलती है। न कोई अश्लील साहित्य पढती है। एक मेरा घर है। वहां पर मां बाप हर समय छोटी–छोटी और बेकार की बातों पर झगड़ते है। अनाप शनाप बहस करते रहते हैं। इतना ही नहीं मेरी मां को पापा पर शक है। और पापा को मां किसी वेश्या जैसी छिछोरी तथा गंदी औरत लगती है। सोच इला, जरा सोचकर तो देख,ऐसा वातावरण है मेरे नर्क जैसे घर का। दादी और बुआ के संग तो मां का छत्तीस का ही आंकडा रहा। उनकी कभी बनी ही नहीं। मैंने उनका सानिध्य पाया ही नहीं। इला मैं कितनी बदकिस्मत हूँ इला। न जाने आगे चलकर मेरा क्या होगा। कैसी दुर्गति होगी।''

ऐसा कहती हुई और सुबकती हुई सुधा उदास हो जाया करती थी। तब इला उसे सहलाती और समझाती कि, ''सुधा, मन छोटा मत करो। तुम एकदम अलग हो। तुम बहुत अमीर और सुखी रहोगी।'' सचमुच। सही में।तुम कहती हो ना इला। तो मुझे भरोसा है। और फिर अपने आंसू पोंछती हुई सुधा बेहद खुश हो जाती। और उसके बाद वह भी चहकने लगती थी। इला सचमुच धरातल पर ही रहती थी। सुधा को उसने हमेशा ही इतना नैतिक संबल दिया लेकिन कभी भी इसका सपने में भी अहंकार नहीं किया।

इला को यों भी सरलता ही भाती थी। शायद उसके आसपास का वातावरण ही ऐसा था। जिसमें रहकर उसने यह सीखा और अपना लिया। बचपन से उसने चंपा काकी और काका को धन दौलत के बावजूद खूब दुखी और मजबूर ही देखा था। तब इला आठवीं में थी। पहले तो वह चंपा काकी के घर खूब आती जाती थी। वहां खेलती थी।

फिर उसे मासिक आने लगा। उसे रहरह कर पेट में, कमर मे दर्द उठता था। पैर झनझना लगते। महीने में पाचन दिन का मासिक उसे दस दिन दर्द देता। इसलिए वह खुद ही घर पर रहती। कुछ न कुछ पढ़ती। कुछ बनाती रहती। तब उसने गौर किया था कि अब वह नहीं जाती तो अकेलेपन से परेशान चंपा काकी अपनी कामवाली के छोटे छोटे बच्चों को अक्सर बुलाती हैं। उनके बेटे–बहू तो जर्मनी में रह रहे थे। चंपा काकी कामवाली के परिवार में ही अपनापन और वात्सल्य लुटाता थी। तब इला यही सोचती थी कि चाहे कुछ भी हो मगर वह कभी भी अपना परिवेश नहीं त्यागने वाली।

उसको गणित विषय में आगे जाकर कोई अच्छी स्कॉलरशिप भी मिल रही थी। विदेश में पढ़ने का मौका था।

नौकरी थी। मगर इला ने तो महाविद्यालय के समय में ही महेश और उसकी कविता से मुहब्बत कर ली थी। दोनों ने साथ–साथ जीने मरने की कसमें खाई थीं।

वह आज जैसी भी थी बहुत खुश थी। यहीं तो बीस किलोमीटर दूर उसके माता–पिता का घर था। रविवार को कभी भी सोचना तक न पड़ता था कि कहां जाना है। कैसे समय बिताना है। महेश के माता–पिता कोविड के बाद रहे नहीं। मगर इला की संगति उसके लिए उत्सव ही रही। और, फिर यह महेश भी इला जैसा था। कस्बे के साहित्यिक मंच पर अपनी खूब सेवा देता। बाकी दिवस अपने विद्यालय में, अपने विषय में, अपने कर्तव्य में ही रमा रहता था। और सुधा भी तो यहीं जमजम कॉलोनी में रहती थी। वह अपनी सुविधानुसार इला से मिलती रहती थी। दिन गुजरते जा रहे थे। अच्छे से गुजर रहे थे क्योंकि संतोष था। महेश और इला जानते थे कि असंतोष का खुद का कोई अस्तित्व नहीं होता..

वह केवल ''समझ और सूझ'' की गैरहाजिरी का परिणाम है।

वैसे उसकी सखी सुधा का प्यार आज भी उतना ही पवित्र और निर्मल था। वह इतनी अमीर हो गई थी। तब भी इला को उतना ही खास मानती थी। मगर इला की नजर तो सुधा के जीवन के दूसरे कोण पर ही थी। वह कोण जहां सुधा की मुट्ठी में नोटों का बंडल है, गले में सोने की चैन भी और हीरे का हार भी है। घर पर नौकर–चाकर हैं। ऐश ही ऐश हैं। बेफिक्री है।

इससे पहले इस संसार की तड़क–भड़क और समस्त चहल–पहल को इला हमेशा की तरह अब तक दूर–दूर से ही देखा कर रही थी– एक सुरक्षित दूरी से, जहाँ भोग विलास और चमक–दमक के शोर सुनाई तो पड़ते थे, पर उसके कानों को तकलीफ नहीं पहुँचते थे। आज मामला पलट गया था।

इस बार उसके उस अनासक्त मन में दस्तक होने लगी थीं। कभी–कभार किसी महंगी दावत में शामिल होने का, और अपने–आपको अन्ततः अलग कर लेने का स्वभाव था उसका। उसने अब तक न कोई चाह या ललक बनायी थी, न कोई आकर्षण पैदा किया था इन सब तरह की महंगी जीवन शैलियों से, पर आज अतीत के उस कोने की धूल साफ करते–करते उसके मन के भीतर का सादगीपूर्ण रूप झड़ता जा रहा था, मानो बरसों से बन्द पड़ा कोई पट धीरे–धीरे भीतर से खुलता जा रहा हो। उस पट के खुलते ही, कामना का कोई झोंका भीतर चला आ रहा था– जिसमें धन दौलत को पाने की गन्ध थी, चमक दमक की आहटें थीं, और ठाठ–बाट पा लेने की सुगन्ध और भाप थी। अपने आप को वह केवल एक शिक्षक मानती थी। ऐसी शिक्षक जो अपने छात्रों को बीजगणित, अंकगणित, रेखागणित पढ़ाते और सिखाते हुए यह जीवन बिता देना चाहती थी। लेकिन आज खुद उसके मन के सभी सूत्र उलझ रहे थे। आज वह किसी सवाल का सरलीकरण नहीं कर पा रही थी। आज गणित का इंद्रधनुष भी किसी दलदल सा बन गया था। इसलिए आजकल कुछ अलग ही हालात हो रहे हैं। और उसकी हर धड़कन की लय में कहीं एक भाप सी उड़ रही होती है।

इला कहीं अटक गई थी। उसकी जिन्दगी के सुर लय ताल कहीं गुम हो रहे थे। शायद वह कुंठित हो रही थी।

अचानक ब्रेक लगा। बस रूकी तो वह उतर गई। फिर सामने से आते हुए ऑटोरिक्शा को हाथ दिया। सौ रूपया किराया देकर स्कूल के गेट पर दोबारा उतरी।

उस दिन स्कूल में सभी ने उसके मेकअप और केश सज्जा की सराहना की मगर इला ने गहराई से किसी का कहा न सुना। वैसे ही जैसे कोई मछली किसी उथले से पानी वाले पोखर में आकर फटाफट से कहीं और हो लेना चाहती हो। कोई तितली नागफनी के जंगल से जल्द पलट लेना चाहती हो। कुछ ऐसा मिजाज हो रहा था आज उसका।

सुधा के घर से लौटने के बाद इला की विचारशैली ही बदलने लगी थी। कुछ भी काम कर रही होती मगर दिल में कोई ख्वाहिश थी जो सुकून नहीं लेने दे रही थी। अचानक ही वह अपनी किस्मत से रूठ रही थी। अपने भाग्य से मन ही मन झगड़ रही थी। अपने हालात पर शर्मिंदा हो रही थी। उसे लग रहा था कि वह शायद गरीब रह गई। जबकि महेश ने उसे कभी भी ऐसा महसूस नहीं होने दिया था। उसकी इस बेचैनी को महेश ने भी महसूस किया जब वह उसके

पसंदीदा समोसे लाया। तब इला किसी मंहगी दुकान के समोसे का नाम याद कर रही थी। महेश उसका ऐसा असंतोष देखता रह गया। इला ने बेमन से वह समोसा खाया। महेश को भी कुछ खाये जा रहा था। इला की कुंठा। इला का मलाल। आखिरकार अचानक ऐसा क्यों?

इस बात को सात दिन भी न बीते थे कि शाम के समय बच्चों का दल–बल आने लगा। गणित की ट्यूशन चलने लगी। महेश को यह सब अटपटा सा लगा। इला तो पैसों की गजब लोभी–लालची बन रही थी।

उसने रात को खाना खाते समय जरा सा टोका। तो इला बोली, ''भारत के संविधान में महिलाओं को भी उतनी ही आजादी है जितनी पुरुषों को।'' ''मगर, इला तुम समझी नहीं मेरी बात, यह ट्यूशन किसलिए?'' महेश की बात पूरी भी न हो पाई थी। ''महेश मेरी भी एक सोच है। एक तरीका है जीने का। तो तुम पहरे लगाना चाहते हो बोलो?'' बाप रे इतनी सख्त तो कभी भी नहीं थी इला की आवाज। हतप्रभ और चकित महेश ने इस बहस को टाल दिया। बातचीत का विषय बदल लिया। तब जाकर खाना ढंग से खाया गया।

एक महीने बाद वेतन भी मिला और ट्यूशन की फीस भी। अब तो पर्स नोटों से लबालब भरा जा रहा था। इला ने महेश को एक कीमती कमीज भेंट की। रसोई के लिए महंगे बर्तन ले आई। अपने लिए भी अठारह कैरेट का छोटा सा जेवर ले लिया।

अब वह स्कूल के प्रति लापरवाह होने लगी। वहां से भी कभी–कभार अवकाश ले लेती। ट्यूशन से खूब रुपये आ रहे थे। इला पहले से धनवान बनती जा रही थी। महेश मन ही मन परेशान था। जिसे इला कहते हैं वह तो आत्मविश्वास, खुद्दारी और सादगी का पर्याय है। फिर यह नयी इला कौन है। वह इस पहेली को खुद से पूछता रहता। मगर बूझ नहीं पाता था। महेश अभी भी उम्मीद और धीरज के नाजुक धागे से बंधा था। इतनी जल्दी इला का निरादर नहीं कर सकता। कुछ साल पहले जिस इला के पहलू में पनाह ली थी। वही वापस आयेगी।

कुछ तो काटा फंसा है। निकल ही जायेगा। वह खुद से बात करने लगता था। वह चुप रहकर ही खुद को ठीक से नियंत्रण में रख पाता था। एक दिन वह शाम के समय घूमने निकली।

आधे रास्ते में एक फोन आया कि जिस सखी सुधा के घर वह आलीशान विवाह समारोह में गई थी। उनके घर इनकम टैक्स का छापा पड़ गया है। टैक्स चोरी तथा कुछेक अवैध धंधे के राज भी खुल गये हैं। शायद आगे कंगाली का सामना करना पड़ जाये।

इला इस खबर पर अपनी गरदन झटक कर एक फास्ट फूड की स्टाल के नजदीक आई तो एक अभिभावक मिल गये। झुक कर नमस्कार करने लगे। इला के अनुशासन और उसकी नियमितता की मिसाल देकर कहने लगे, ''आपका अनुशासन, सादगी और ईमानदारी को देखकर हम सभी अभिभावक बहुत प्रेरणा लेते रहते हैं।'' इला ने उनकी बात विनम्रतापूर्वक सुनी।

घर लौटते हुए इला सोच में डूब गई। उसने एक जीवन दर्शन बनाया था। उसे देखकर लोग उसका अनुकरण कर रहे हैं। और अब वह पैसे के लोभ में किस अंधे कुएं में जा रही है। आज उन अभिभावक ने उसे पतन से बचा लिया। इला ने जल्द ही ट्यूशन का धंधा छोड़कर पूरा ध्यान अपने विद्यालय और छात्रों के विकास पर लगाने का संकल्प कर लिया।

वापस लौटती हुई इला उस कोचिंग वाले से फोन पर कह रही थी कि, ''अब, यह सारे बच्चे अब आपके पास ही आयेंगे। इस टर्म का कोर्स पूरा करवा रही हूं। और लगभग दस–बारह दिन में सब हो जायेगा। उसके बाद मैं यह सब बंद कर रही हूं। कुछ खास वजह है जो अभी बता नहीं सकती। उसने अब बात पूरी हुई तो अपना फोन बंद किया। इला ही जानती थी कि उसने एक असीम सुकून महसूस किया। अब अपनी नीयत पर सचमुच मन ही मन उसे कितना मलाल हो रहा था। वह ऐसी टेढ़ी सी फितरत की जदी में आखिर क्यों ही जा रही थी। सबसे अनोखी शांति तो जिसे मिली वह महेश था। वह मन ही मन झूम रहा था। महेश को आत्मिक आनंद मिला। उसे अपनी वही पहले वाली इला वापस मिल गई थी। उसका घर जन्नत हो गया था। ◆

पता : दुर्गेश पुष्कर रोड, कोटरा, अजमेर,
राजस्थान–305004
मो. : 9828792720

जब वह भी चली गई

❑ डॉ. सतीश ''बब्बा''

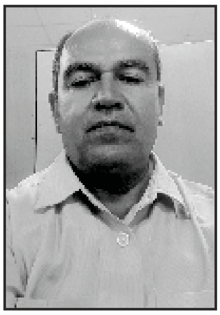

एक साथ खेले, एक साथ खाना खाया, उसने मुझे गोद लेकर भी घुमाया था। अपने मन को दबाकर मेरे मन का खिलाती थी। मैं रोता तो खुद रोती थी, मेरे हंसने पर अपना दर्द भूल जाती थी, वह खुद हंसने लगती थी। एक मां, एक ही बाप की औलाद थे हम दोनों, भाई—बहन!

यह कैसी विडम्बना, यह कैसी रीति, रिवाज है कि, एक दिन पत्थर दिल होकर मां—बाप ने उसे मुझसे दूर कर दिया था। एक भाई से बहन को, एक बहन को भाई से अलग कर दिया गया था। एक अनजान मनुष्य के साथ जाती वह खूब रोई थी, मैं भी खूब रो रहा था, चिल्ला रहा था। वहां मौजूद निर्दयी समाज हमारी परवाह किए बगैर शहनाई बजा रहा था।

मेरे ऊपर दुख के पहाड़ टूटने शुरू हुए तो वह रुकने का नाम नहीं ले रहे थे। वह आती तो वह मेरे दुख बांट लेती थी। इस बार भी वह आई थी, उसे देखकर मेरा मन कुछ ढांढ़स बांध लिया था।

उसके होते हुए असह्य दुख को भी मैं सहने की शक्ति पा गया था। यह क्या, पंद्रह दिन में उसे जाना ही था। सभी कहते थे, ''ऐसे में नहीं रुकना चाहिए!''

यह कैसी रीति बनाई गई है कि, वही घर उसके लिए पराया हो गया है, जबकि उसका भी यही घर था। नन्हें पग उसके यहीं चलना सीखे थे, मेरे साथ खाना खाया करती थी, एक थाली में दोनों खाते थे, मुझे वह भर पेट खिलाकर खुश हो जाती थी।

जहां भी मैं जाता, वह कवच बनकर मेरे साथ ही साथ रहती थी। मां का बाप का वह भरोसा थी। वह पराई कैसे हो गई, क्यों हो गई? आज भी वह मुझे बहुत प्यार करती है। उसके बेटे भी मुझे बहुत प्यार करते हैं। वह आखिर क्यों नहीं रह सकती है, कुछ दिन के लिए मेरे साथ?

वह मेरे बेटों को एक सूत्र में बंधे रहने के उपदेश दे रही थी, मैं मूक होकर सुन रहा था। वह अच्छी नहीं बहुत अच्छी थी। उसने मेरी बहू से कहा, ''यह मेरा भाई बहुत अच्छा है, इसके खाने–पहनने का ध्यान रखना। यह अम्मा–बापू का, मेरा भी बहुत दुलारा है!''

मैं उसकी बातों को ध्यान से सुन रहा था, गुन रहा था। उसकी आंखों से आंसुओं की धारा बह रही थी, मेरी भी आंखों से आंसू रोके नहीं रुक रहे थे। मेरी हिचकी बंध रही थी, मैं चाहता था उसे रोक लूं, चाहकर भी नहीं रोक पा रहा था, बस आंसू बहा रहा था।

वह अपने आंसुओं को छुपाते हुए मेरे पास आई। वह कहने लगी, बड़ी थी आखिर उसे हक था मुझे निर्देश देने का! एक मैं था चाहकर भी नहीं रोक सकता था। मेरे अंदर एक डर था कहीं रुकने के लिए कहकर, रीति तोड़ा तो कुछ इसका अहित न हो जाए!

वह मुझे पूरे उसी हक से कह रही थी जो हक वह मेरे, अपने बचपन में रखती थी। उसने कहा, ''जब मन करे वहां आ जाना, रहना, घूमना–फिरना, जब मन करे तब चले आना!''

मन तो कर रहा था कि, कह दूं, 'तू तो जा रही है, तू तो अपने घर से, अपने भाई के घर से, अपने अम्मा–बापू के घर से जा रही है, जहां तेरा जन्म हुआ, जहां तू पली–बढ़ी, खेली। अब मुझे कहती है, चले आना! सचमुच तू धन्य है तूने परायों को अपना बना लिया, तू ने दूसरे के घर को अपना घर बना लिया, वह पराए भी तेरी बात मानते हैं! एक मैं हूं जो अपनों को अपना नहीं बना पाया। तू चली जाएगी, मुझे अच्छा नहीं लगेगा, तुम रुक जाओ ऐसा कहने की हिम्मत नहीं है मुझमें!'

मन तो कर रहा था कि, कह दूं, 'तू तो जा रही है, तू तो अपने घर से, अपने भाई के घर से, अपने अम्मा–बापू के घर से जा रही है। जहां तेरा जन्म हुआ, जहां तू पली–बढ़ी, खेली। अब मुझे कहती है, चले आना! सचमुच तू धन्य है तूने परायों को अपना बना लिया। तूने दूसरे के घर को अपना घर बना लिया, वह पराए भी तेरी बात मानते हैं! एक मैं हूं जो अपनों को अपना नहीं बना पाया। तू चली जाएगी। मुझे अच्छा नहीं लगेगा। तुम रुक जाओ। ऐसा कहने की हिम्मत नहीं है मुझमें!'

वह कहती जा रही थी, रो–रोकर मैं सुन रहा था आंसू बहा–बहाकर!

वह कह रही थी, ''जो मिल जाए खाना खा लिया करना, रोना नहीं। एक दिन सभी को जाना है। भाभी का तुम्हारा इतने दिनों का साथ था। भगवान के निर्णय को स्वीकार कर लेना! तुम आते रहना, मैं भी आती रहूंगी! मैं पराधीन हूं, मैं नहीं आ पाऊं तो, तुम जरूर आ जाना। मैं तुम्हारी राह देखती रहती हूं। देखती रहूंगी!''

कितनी महान थी वह, खुद फफक–फफक कर रो रही थी। मेरे आंसू पोंछ रही थी। अम्मा–बापू के निर्णय को मानकर दूसरे की पराधीनता स्वीकार करके उसे निभा रही थी। मेरी भी फिक्र थी उसे। उनकी भी दासता स्वीकार थी उसे। पर वह अपने फर्ज से हटने को तैयार नहीं थी।

मैं उसका भाई हूं। एक ही उदर से जन्म लेने के बावजूद भी उससे दूर हो गया हूं। वह रोती रही, मुझे समझाती रही फिर मुझसे अलग, दूर हो जाने के दुख से इतनी दुखी होकर रोई कि उसकी घिग्घी बंध गई। उसके मुंह से आवाज नहीं निकल रही थी।

मैं भी खड़ा हो गया था। मेरे पैर कांप रहे थे। मैं डिड़िया कर रो पड़ा था। वहां का ऐसा माहौल बना कि करुणा का वर्चस्व हो गया था। उसके जाने की कल्पना मात्र से जो दुख हुआ मुझे, उससे पहले का दुख कम हो गया था।

उसके जाने की बात से जो मुझे दुख हुआ, वह दुख को भी दुख हुआ, ऐसा लगा था। मैं सोच रहा था कि, क्या यह वही है जो मेरे लिए रूठती थी। मुझे कपड़े पहनाती थी। स्कूल लेकर जाती थी। तब वह कितनी मासूम थी। कितनी भोली–भाली थी। आज वह सयानी हो गई है, समझदार हो

गई है। प्रेम की प्रतिमूर्ति तब भी थी, आज भी वह मेरे सामने प्रेम की प्रतिमूर्ति है। हम दोनों एक–दूसरे से लिपट गए थे। हम तब भी लिपट कर रोते–रोते सो जाया करते थे। अम्मा–बापू जगाकर खाना खाने को दिया करते थे।

एक बार वह मेरे लिए पड़ोस के सम्पत नाम के लड़के से लड़ गई थी। सम्पत हम दोनों से बड़ा था फिर भी वह मेरे लिए अपनी चिंता नहीं करती थी।

आज वह कुररी पक्षी की तरह रो रही थी। उसे अपनी नहीं, मेरी चिंता खाए जा रही थी। वह तुलसी की इन पंक्तियों को साकार कर रही थी, 'कत विधि सृजीं नारि जग माहीं, पराधीन सुख सपनेहु नाहीं!'

वह कितनी मासूम दिख रही थी। रोते–रोते बेहाल हो गई थी। मेरा भी हाल कुछ ठीक नहीं था। मैं भी बेहाल हो रहा था। वहां खड़े रिश्तेदार सभी चुप थे।

कुछ लोगों ने जिनमें स्त्री–पुरुष सभी थे, हिम्मत जुटा कर हमें अलग कर दिया था।

ऑटो रिक्शा आ गया था। गांव के लोग भी आ रहे थे। मुझसे मिलकर वहीं तख्त में बैठने के लिए कह रहे थे। दुनिया की तमाम दृष्टांतों से मुझे समझाने की कोशिश कर रहे थे।

कुछ स्त्रियों मिलकर उसे ऑटो में बैठा दिया था। ऑटो रिक्शा चल दिया था। मैं खड़ा देख रहा था। मेरी आंखों से अविरल आंसुओं की धारा बह रही थी।

मैं हाथ आगे किए हुए देखता रह गया था, वह मेरी आंखों से ओझल हो गई थी।

उसके रोने की आवाज सुनाई देना बंद हो गई थी। मेरी जबान से आवाज नहीं निकल रही थी। जब वह चली गई थी!

वह कह रही थी, ''जो मिल जाए, खाना खा लिया करना। रोना नहीं। एक दिन सभी को जाना है। भाभी का तुम्हारा इतने दिनों का साथ था। भगवान के निर्णय को स्वीकार कर लेना! तुम आते रहना। मैं भी आती रहूंगी! मैं पराधीन हूं, मैं नहीं आ पाऊं तो, तुम जरूर आ जाना। मैं तुम्हारी राह देखती रहती हूं। देखती रहूंगी!''

ऐसा नहीं है कि, वह पहले कभी नहीं गई थी! वह जब पहली बार गई थी तब भी मैं बहुत रोया था। उसके साथ जाने की जिद भी की थी। तब अम्मा–बाबू थे संभालने वाले! मुझे बुखार आ गया था उसकी याद में। तब मुझे लेकर बापू उसके घर जाकर उसे जल्दी से लेकर आ गए थे, अपने घर। मेरा बुखार उतर गया था।

फिर उसके साथ मैं भी जाता था, बापू ले आते थे मुझे, मां संभालने वाली थी, यहां पर मुझे!

अम्मा–बापू के स्मृति शेष होने पर भी यही कहा गया था कि, 'रुका नहीं जाता है!'

जब वह भी चली गई थी, मुझे बहुत दुखी छोड़कर। खुद दुखी होकर। तब मुझे संभालने वाली मेरी पत्नी थी। उसे भी शुकून था कि, भाभी सब संभाल लेगी!

आज जब वह भी चली गई, तब आज मुझे संभालने वाली कोई भी नहीं हैं, न मां है, न वह है, न उसकी प्यारी सी भाभी है।

उसकी भाभी उसके जाने के समय मुझे कोई काम बताकर खेतों में भेज दिया करती थी। यहां वह उसे बिदा कर दिया करती थी। जब मैं आता, वह चली गई जानकर मैं दुखी तो होता था लेकिन उसकी भाभी मुझे समझा कर, संभाल लिया करती थी।

जब वह भी चली गई, तब आज मुझे संभालने वाला कोई नहीं है, स्मृति शेष पत्नी अब आएगी नहीं, वह भी चिंतित हो रही होगी, मैं तो दुख के सागर में डूबते–उतराते जाने कब तक विरह – वेदना सहता रहूंगा! ◆

पता : ग्राम पोस्टाफिस– कोबरा, जिला–चित्रकूट, उत्तर प्रदेश, पिनकोड–210208

मो. 9451048508, 9369255051

पदचिन्ह

❑ रोचिका अरुण शर्मा

अनमनी सी बैठी अदिति के फोन की घंटी बजी तो उसने देखा मोबाइल स्क्रीन पर 'माँ' चमक रहा था। उसने फोन उठाया और रुंधे हुए स्वर में पूछा "हाँ कहिये माँ"

कैसे हो तुम सब ?

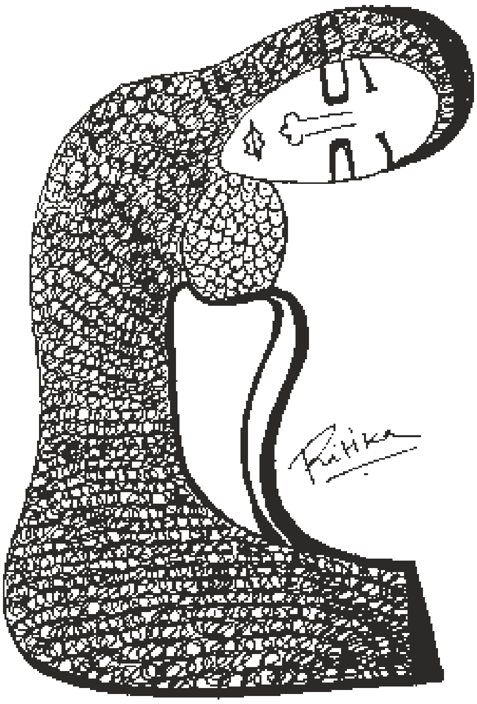

ठीक हैं उसने दो टूक जवाब दिया।

"ऐसा है तुम्हारा छोटा भाई तुम्हारे शहर में आ रहा है, कह रहा था उसे कुछ काम मिला है उधर...

अदिति ने बात आधे में काट कर सख्ती से कह दिया "माँ मुझे मेरे रिश्ते स्वयं निभाने दो"। आँखों से अश्रु धारा बह रही थी ...मन व्यथित था कभी अपनी माँ को पलट कर जवाब नहीं दिया था। अपनी माँ को 'ना' कह कर टालने की तो हिम्मत ही नहीं थी उसमें।

दरवाजे की घंटी बजी तो देखा विवेक उसके पति आज दफ्तर से जल्दी लौट कर आ गए थे। उदासी को दूर करने की कोशिश करते हुए वह मुस्कराई और चाय बनाने रसोई में चली गयी।

मन में उथल–पुथल मची थी "माँ को समझ नहीं आता क्या ? मुझे ब्याहे बीस बरस बीत चुके हैं। ब्याह उपरान्त भी मायके की कई जिम्मेदारियाँ वह निभाती रही तो क्या आजीवन वह अपने भाई–बहन को पालती रहेगी ?"।

चाय अच्छी उबल कर उफनने लगी और पतीले की गर्मी से "सू .. ऊँ" की आवाज आयी तब उसकी तंद्रा टूटी। उसने गैस की आँच धीमी की और चाय छान कर विवेक के साथ बैठ गयी। आजकल विवेक भी तो बुझे–बुझे से रहते हैं। न जाने क्या हुआ है उसके परिवार को एक के बाद एक मुसीबतें आ रही हैं। पहले विवेक की नौकरी छूट जाना और अब बेटे का पढ़ाई में मन न लगना।

चाय के खाली कप रसोई में रखे और शाम के खाने के लिए सब्जी काटने लगी। लेकिन मन है कि बार–बार माँ के व्यवहार पर ही जा कर अटक जाता है। "माँ क्यों चाहती है कि वह उन सभी रिश्तों को जबरदस्ती निभाये जो उसके जीवन में दुःख पैदा करते हैं। बरसों पहले उसने माँ को कह दिया था कि माँ एक तरफा रिश्ते कब तक निभेंगे ? छोटे भाई–बहन जितनी मेहनत करेंगे उतना ही फल तो उन्हें मिलेगा न, फिर भी माँ जब–तब सब को बराबर रखने की कोशिश में उसे उनकी कोई न कोई जिम्मेदारी दे ही देती।"

उसके पिताजी ने कितने हक से उसके सामने आँसू बहा कर कह दिया था "बेटी तुम बड़ी हो और समझदार भी, अपने भाई–बहनों के घर तुम्हारे पास में ही ले दो तो कभी दुःख–सुख में एक–दूसरे के काम आ सको। मँझला भाई है तो बहुत समझदार लेकिन भाभी दूसरे घर की है न, भाई चाहे तो भी अपने छोटे भाई–बहनों के लिए कुछ नहीं कर पायेगा।

अपने पिता की आज्ञाकारी बेटी भला कैसे उनकी बात टाल देती। अगले ही दिन विवेक से कह कर वह अपने पिताजी को प्रॉपर्टी डीलर के यहाँ ले गयी थी।

एक महीने के अन्दर पहले भाई एवं फिर बहन के घरों की रजिस्ट्री का काम चालू हो गया था। माता–पिता, भाई–बहन सभी कितने प्रसन्न थे और उसकी वाह–वाही किया करते थे। जब उनके घर सज गए तो हर छुट्टी के दिन अदिति के घर पर मायके वालों की महफिलें सजने लगीं। माँ गुरूर से सदैव कहतीं "बेटी तुम अपने भाई–बहनों की बड़ी बहन ही नहीं बल्कि माँ हो"।

वह भी अपने माता–पिता को प्रसन्न देख एवं स्वयं की तारीफ सुन फूल कर दूनी हो जाया करती। आखिर माता–पिता यही तो चाहते हैं परिवार में स्नेह बना रहे। उनके बच्चे वक्त जरूरत एक–दूसरे के लिए हाजिर हो जाएँ। वह स्वयं भी तो यही चाहती थी कि उसका मायका एवं ससुराल दोनों में सुख–शांति बनी रहे। ससुराल में भी नन्द–देवर के लिए दोनों पति–पत्नी ने खूब किया। दोनों जब भी बात किया करते कभी इधर के भाई–बहन या फिर उधर के भाई–बहन, माता–पिता का जिक्र ही तो होता। अदिति जब कभी मायके जाती और सभी रिश्तेदारों से मिलती तो सदैव कहती "मैं स्वयं को सबसे सुखी मानती हूँ, मेरे पति मेरी बात सुनते हैं। माता–पिता आप सभी लोगों का प्यार भरा आशीर्वाद भी मुझे मिलता है"।

लेकिन अचानक से सब कुछ यूँ बदल जाएगा कभी सोचा भी न था। जहाँ उसके घर सदैव रिश्तेदारों का तांता लगा रहता था। भाई–बहन हर त्योहार पर उसके घर होते थे। उन सब ने एक–एक कर अपने–अपने घर होते ही उससे दूरी बना ली थी। वह सोचा करती थी कि माता–पिता तो दूसरे शहर में रहते हैं और उनकी उम्र भी हो गयी है। अब तो मायका पास में रह रहे भाई–बहनों से ही है। लेकिन भाई ने तो कभी अपने घर बुलाया ही नहीं। पहले मँझले भाई को दोषी ठहराया कि भाभी शायद किसी से सम्बन्ध रखना ही नहीं चाहती। इसीलिए तो छोटे भाई–बहन की जिम्मेदारी उस पर डाल दी गयी थी। उसमें उसे कोई एतराज भी नहीं था। ईश्वर ने उसे आर्थिक एवं बौद्धिक रूप से संपन्न पति एवं परिवार दिया था जिसका वह सदा ही धन्यवाद किया करती। लेकिन हर छुट्टी एवं वार–त्योहार जमघट उसी के घर लगता। वह सोचती कभी एक बार तो उसे भी बुलाया होता। उसने इस बात की माँ से शिकायत भी की थी "माँ ये लोग समझते नहीं क्या? मेरा बच्चा छोटा है, रोज सवेरे स्कूल के लिए जल्दी जागती हूँ । ये लोग आ कर मेरे घर बैठ जाते हैं। रात का खाना निपट जाता है फिर भी ये लोग रवाना नहीं होते। बच्चे को सुलाने जाती हूँ तो अकेले ही बैठे रहेंगे लेकिन अपने घर नहीं जाते। इतना भी नहीं सोचते कि हमारी निजी जिन्दगी भी तो है।

माँ और कुछ तो कर न पातीं लेकिन इतना कह देतीं "हर छुट्टी तू भी उनके घर जाना शुरू कर दे"।

"माँ बगैर बुलाये? मुझे अच्छा नहीं लगता माँ और फिर इतना वक्त ही कहाँ होता है? हमें हमारा परिवार भी तो देखना होता है, घर–बाहर के कई काम होते हैं। ससुराल पक्ष के रिश्ते भी तो निभाने हैं न माँ।''

एक बार उसने अचानक से छोटे भाई को फोन कर कह भी दिया था "आज तुम्हारे घर आ रहे हैं हम और खाना भी वहीं खायेंगे"।

उस दिन जब वे पहुँचे, भाई के दोस्तों की महफिल उसके घर जमी थी। भाभी रसोई में व्यस्त थी और दोनों के मुँह ऐसे सिल गए थे जैसे उन्होंने बोलना ही न सीखा हो। उसी दिन वह समझ गयी थी कि उन्हें रिश्तों की अहमियत नहीं। किसी त्योहार पर भी तो नहीं बुलाया, राखी के दिन सभी अदिति के घर ही जमा हुआ करते।

क्या वे भूल गए कि रक्षा बंधन के बाद भाई दूज भी आता है। यह सब उसने अपनी माँ को बताया था लेकिन क्या माँ भी उन्हें कुछ कहती नहीं? कुछ रीति–रिवाज बताती नहीं क्या?

खैर ईश्वर ने समय–समय पर किसी न किसी रूप में आ कर उसे सही मार्ग दिखा कर उसके लिए उचित व्यवस्था भी की है। शायद इसीलिए उसके पति का तबादला दूसरे शहर में हो गया है। करीब तीन वर्ष हँसी–खुशी बीते। तभी ससुराल के किसी रिश्तेदार का ब्याह था सो उसने अपनी बहन से फोन पर बात की। मैं आ रही हूँ शादी में, कुछ दिन तुम्हारे घर में भी रहूँगी। बच्चों की छुट्टियाँ हैं न, हम दोनों उन्हें ले कर साथ में घूमेंगे–फिरेंगे। बहन ने खुशी जाहिर की और अदिति विवाह निपटा कर उसके घर जा धमकी।

पहला दिन तो बहन ने आवभगत की लेकिन अगले ही दिन से यह क्या? सवेरे वह जाग कर चाय–नाश्ता बना लेती लेकिन बहन तो गहरी नींद में खर्राटे भरती होती। कहीं बाहर जाने की योजना बनाते तो बहन का घर का काम ही उससे न सिमटता। हर जगह देरी से पहुँचते। दोनों के बच्चे आपस में झगड़ा करते तो छोटी बहन अदिति के बच्चों को डांट लगा देती। अदिति को अपनी सगी बहन के घर में अपनत्व जैसा भाव महसूस ही नहीं हुआ। बहन के पति तो अक्सर विदेश यात्राओं पर रहते हैं और वह अपनी सहेलियों के साथ समूहों में खूब घूमना–फिरना करती है। सोशल मीडिया पर उसने खूब तस्वीरें देखी हैं अपनी बहन की। लेकिन उसके साथ ऐसा गैरों जैसा व्यवहार ...उसे कुछ समझ ही न आया।

जब वह अपने घर लौट आयी तो उसने माँ को फोन पर सब बताना चाहा था लेकिन माँ तो अपने दोनों छोटे बच्चों के खिलाफ एक शब्द भी सुनना ही नहीं चाहती थीं और कह देतीं "तुम सदैव दूसरों की शिकायत ही करती रहती हो"।

अदिति अपना सा मुँह लेकर रह जाती और मन ही मन खूब घुटती कि आखिर उसका दोष कहाँ है। अपने व्यवहार का आंकलन करती...अपने भाई–बहनों को ऑनलाइन खरीद कर उपहार भेजा करती कि कहीं चूक हो गयी हो तो इस प्रकार भरपाई हो जाए। अक्सर वह अपने परिवार के साथ विदेश यात्राओं पर भी जाया करती तो सभी के बच्चों के लिए वहाँ से उपहार भी लाया करती। उसकी माँ ने यही सिखाया था कि कहीं जाओ तो अपने छोटे भाई–बहनों के लिए उपहार जरूर लेकर आओ। वे इन उपहारों को सीने से लगा कर रखेंगे। फिर आखिर कमी कहाँ है?

शहर तो छूट ही चुका था अब धीरे–धीरे रिश्ते भी छूटने लगे थे। हाँ, रक्षा–बंधन पर वह मिठाई एवं राखियाँ भिजवाना कभी न भूलती।

लेकिन इतने बरसों में उसके बच्चों के लिए कहीं से कोई उपहार नहीं आया। मन ही मन उसे समझ आने लगा था कि रिश्ते सिर्फ दिखावे मात्र के रह गए हैं। कई बार वह अपनी माँ से बात कर मन हल्का भी करती "माँ हमारा परिवार ही ऐसा है, दूसरे लोग बड़े समझदारी से रिश्ते निभाया करते हैं"।

माँ उसकी बात काट कर कह देतीं "सभी के ऐसा है"।

वह चुप लगा जाती, पलट कर जवाब दे ही न पाती। लेकिन मन ही मन सोचती "ऐसा तो नहीं है माँ, मेरी सहेलियों के भाई–बहन तो बार–त्योहार आना–जान किया करते हैं। मेरे यहाँ आना तो सदैव रहा किन्तु जाना कभी नहीं"।

मँझला भाई तो मानो सभी से कट ही गया था। भूले–चूके भी कभी उसका फोन न आता। यदि वह कभी

फोन करती तो वह दो टूक बात कर फोन रख देता। उसका मन आहत हो कर रह जाता। इसके बाद उसने मन ही मन तय कर लिया था यदि भाई–बहन बुलायेंगे तो वह उनके घर जायेगी अन्यथा नहीं। जब कभी ससुराल पक्ष का शादी–ब्याह या अन्य कोई सामाजिक आयोजन होगा वह वहीं जा कर अपने शहर लौट आयेगी।

इसी बीच मँझली भाभी का फोन आने लगा। अदिति को लगा कि शायद मँझले भाई–भाभी उसकी नाराजगी समझने लगे हैं। भाभी बता रही थीं कि भाई की तनख्वाह भी बढ़ी है। बहन भला भाई की इस खुशी पर बधाई दिए बगैर कैसे रह सकती थी? भाई भी चहकता सा बोला बड़ा घर लेने की सोच रहा हूँ। माँ का फोन भी जब आता भाई की योजना अदिति से साझा किया करती। अदिति सोचती कि शायद अब रिश्ते सुधर रहे हैं। खैर नाराजगी रहनी भी नहीं चाहिये सब अपने ही तो हैं सो वह सारी पिछली बातें भूल बैठी।

इस बार जब मँझली भाभी का फोन आया "भाभी कभी यहाँ आ जाओ न, साथ में रह लेंगे और घूम–फिर भी लेना" अदिति के मन के भाव होठों पर आ ही गए थे।

कहाँ दीदी अभी तो सर पर खर्चा है, घर ले रहे हैं न। इतने महँगे घर हैं पसंद तो आते हैं लेकिन अपनी जेब में उतनी रकम भी तो होनी चाहिए न।

"दीदी आप ही आ जाइये न, आप तो कभी हमारे घर रही ही नहीं। एक शहर में नन्द–भाभी रहें तो क्या कभी अपनी भाभी के यहाँ नहीं रहते क्या?" पुरानी बातें भूल पुनः खुश हो कर बड़े दिल वाली अदिति बोल पड़ी "आप अपने को अकेला समझती हैं क्या? जैसे आपके आगे–पीछे कोई है ही नहीं। आप तो घर लीजिये मैं विवेक से कह कर कुछ रुपयों का इंतजाम करवा दूँगी"।

माँ के फोन भी इन दिनों लगातार आ रहे थे, "बड़े भाई के साथ हम भी घर देखने गए थे, तीन–चार घर देखे हैं। किसी में कुछ कमी तो किसी में कुछ और। जो पूरी तरह पसंद आया वह बहुत ही महँगा है"।

हाँ माँ, मँझली भाभी का फोन भी आया था बता रही थीं मुझे सब। मैंने भी कह दिया है कि घर लें, कुछ रुपयों का इंतजाम विवेक कर देंगे। बाद में भाई धीरे–धीरे चुका देगा। माँ भी प्रसन्न हो गयी थी और क्यों न हो अपने बच्चों को आगे बढ़ते देख कर ही तो माता–पिता का जी प्रसन्न होता है।

"एक दिन अचानक से दफ्तर से विवेक का फोन आया "अदिति हमारी बुआ जी की बहू का दुर्घटना में देहांत हो गया है, हमें जाना होगा। तुम बैग पैक करो। मैं फ्लाइट की टिकट बुक कर रहा हूँ"।

चार दिन का बैग झटपट पैक कर अदिति ने एयरपोर्ट से ही अपने भाई एवं भाभी को अलग–अलग फोन किया और दोनों को सूचित किया कि वह आ रही है। बुआ जी की बहू का देहांत हो गया है। चलो इस बहाने तुम सभी से मिलना हो जाएगा।

लेकिन चार दिन में किसी ने उसे अपने घर आमंत्रित न किया। उसे लगा कुछ तो दाल में काला है। उसने बुआ जी के घर से ही अपने मँझले भाई को फोन किया "हम लोग दो दिन और यहाँ रहेंगे"।

"ओके" भाई ने दो टूक कह दिया था लेकिन घर आने को एक बार भी नहीं कहा। वह बगैर अपने भाई से मिले अपने शहर लौट आयी थी।

आने के बाद जब माँ से बात हुई उसने सारा वाकया माँ को सुनाया। साथ ही उसने अपने मन की बात भी माँ से साझा कर ली "माँ मुझे तो लगता है भाभी ने मुझे मूर्ख बनाने की कोशिश की। दरअसल उन्हें घर खरीदना है तो सोचा होगा कि कुछ रुपयों की मदद मिल जायेगी। और साथ ही मुझे अपने घर रहने का आमंत्रण भी दिया। लेकिन उन्हें क्या मालूम कि मेरे ससुराल में ...दुर्घटना हो जायेगी और मैं वहाँ पहुँच जाऊँगी। वहाँ जाने के बाद तो मुझसे जैसे कोई वास्ता ही नहीं"।

"अब मैं इन एकतरफा रिश्तों को समझ चुकी हूँ माँ ...मैं नादान थी। सबसे बड़ी और साथ ही में सबसे मूर्ख भी। बस दोनों तरफ के परिवार और रिश्तों में ही पड़ी रही कभी

दोस्तों और पास–पड़ोसियों से ज्यादा मेल–मिलाप किया ही नहीं, कहाँ से दुनियादारी सीखती माँ? बस आप जो कहती गयीं मैं वही करती गयी। अपने माता–पिता को ईश्वर समान समझा। विवाह उपरान्त सास एवं विवेक ने जो कहा वह माना। मैंने अपने दिमाग का तो कभी इस्तेमाल किया ही नहीं। हाँ, मैं मूर्ख ही तो हूँ, सदा यही सोचा रिश्ते दिल से निभाये जाते हैं। यदि ज्यादा दिमाग लगाया तो इन्हें छिन्न–भिन्न होते देर नहीं लगेगी। और देखिये माँ दिल बेचारा अकेले काम करते–करते थक गया। साथ–साथ में थोड़ा दिमाग भी लगाया होता और सभी को एहसास करवाया होता कि कोई भी रिश्ता दोनों तरफ से चलता है तो यूँ जी दुखता नहीं माँ। उन्हें भी रिश्तों का मोल समझ आता।"

"अरे भई ! आज खाना मिलेगा या नहीं ?" विवेक की आवाज सुन कर वह वर्तमान में आयी। खाना खाया और सोने के लिए गयी तो पुनः विचारों की शृंखलाओं ने मष्तिष्क में घेराबंदी कर दी थी।

बेटे के व्यवहार में दिन–प्रतिदिन बदलाव देख कर अदिति की फिक्र बढ़ती जा रही थी। कॉलेज की पढ़ाई में पिछड़ता जा रहा है, जो बेटा अपनी छोटी बहन के लिए सदैव हाजिर रहता था, वह उससे ईर्ष्या कैसे करने लगा। बात–बात में तुलना क्यों करता है? उसने तो दोनों भाई–बहन को सदा प्यार से रहना ही सिखाया। सबसे ज्यादा दुःख तो उसे तब हुआ जब बेटा सुपर मार्केट गया और सिर्फ एक पैकेट वेफर लेकर आ गया। जैसे ही उसने कहा "बेटा अपनी छोटी बहन के लिए भी ले आता...."

उसका वाक्य पूरा हो, उसके पहले ही वह बिफर कर रोने–चीखने लगा था "तो क्या मैं अपने लिए कुछ न करूँ? उसी में से थोड़ा दे देता मैं उसे। सारी जिम्मेदारियाँ सिर्फ मेरी ही हैं? बहन जिद कर अपनी हर बात आप व पापा से मनवाती है जबकि जिम्मेदारी लेने में पीछे हट जाती है। मैं सदैव आपकी बात मानता रहा लेकिन उससे तो कोई कुछ उम्मीद भी नहीं रखता क्योंकि वह जोर से बोल कर जवाब दे देती है, सारी उम्मीदें सिर्फ मुझ से ही?"

अदिति समझ न पायी आखिर ऐसा क्या कह दिया उसने?

अगले दिन अदिति ने बेटे के साथ बैठ कर शांति से बात की "बेटा कल ऐसा क्या कह दिया था मैंने? मिल–बाँट कर खाने–पीने में तो अच्छी बात ही है न"।

"मॉम आप समझती ही नहीं। आपने मुझे बचपन से छोटी बहन के प्रति जिम्मेदार बनाया। लेकिन आप स्वयं यह भूल गयीं कि मैं भी तो बच्चा ही था। मैं अपने हिस्से में से उसे दिया करता, स्कूल में उसका ख्याल रखा किया करता। अपना खयाल रखना तो मुझे आया ही नहीं। आज भी मैं अपने से पहले दूसरों के लिए सोचता हूँ। मॉम, आप यह सब अनजाने में कर रही हैं। लेकिन आप नहीं समझतीं आपका छोटा सा वाक्य मुझे कितना तोड़ देता है। अपने दोस्तों के बीच तो मैं कुछ बोल ही नहीं पाता हूँ। स्वयं कोई भी निर्णय लेने में हिचकता हूँ क्योंकि हर काम तो आपसे पूछ कर किया बचपन से। मॉम हर इंसान को अपने लिए स्वयं ही जिम्मेदार होना चाहिए और इसकी ट्रेनिंग उन्हें बचपन से मिलनी चाहिए।"

अदिति हतप्रभ सी अपने बेटे को बोलते हुए सुन रही थी और मन ही मन सोच रही थी "जिस बेटे ने कभी मुँह न खोला। उसका अंतस इतना आहत है, वह कभी समझ ही न पायी"। उसकी आँखों से अश्रुधारा बहने लगी थी।

बेटे के सर पर हाथ फेरा और अपने कमरे में आ गयी।

सन्नाटा पसरा था एवं उसकी धड़कन बढ़ गयी थी, बहती आँखों से फर्श पर उसे एक काल्पनिक पगडंडी दिखाई दे रही थी जिस पर उसकी माँ के पदचिन्ह थे।

वह बुदबुदाई "अब आपके सभी पदचिन्हों पर नहीं चलूँगी माँ। हर कदम उठाने से पहले मन के साथ मष्तिष्क का भी इस्तेमाल करूँगी...अनजाने में मैं अपने बच्चों को वही दे रही थी जो आपने मुझे दिया। किसी को तो बदलाव लाना होगा न इन एकतरफा रिश्तों को दोतरफा कर सुचारू रूप से चलाने हेतु।" ◆

पता : ए–2–103, कासाग्रांड एमेथिस्ट, शोलिंगनल्लूर, चेन्नई–6000119

मो. : 9597172444

तुम आना....

अखिलेश मणि त्रिपाठी

तुम आना...
जैसे खेतों की सूखी दरारों में
किसान की उम्मीद बन आती हैं
बारिस की बूंदें...

जैसे
शाम को घोसलों में...
चूजों की चहक बनके आती है,
दाना लिए गौरैया...

जैसे
टूटते हुए तारों पर
अक़ीदत से
आ जाती है ज़ेहन में मन्नतें
कुछ अतृप्त कामनाएं...

मेरी सांस ढलने के बाद भी
तुम रहना
मेरी उम्मीदों का आकाश बनके...
तुम्हारा सावन,
मैं बनके बरस लूंगा...
अपने भावों के बादल से...
अपनी आँखों से, अपने एकांत में।

◆

पता : सूचना विभाग, उ.प्र. पार्क रोड, लखनऊ–226001
मो. : 9454918062

छलके हर रोज गगरिया जी

अशोक अंजुम

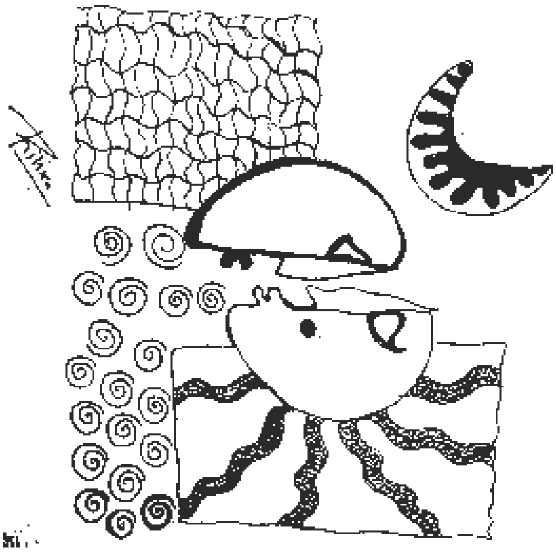

जिस दिन से जनम लिया मैंने
उस दिन से घटे उमरिया जी!
छलके हर रोज गगरिया जी!

जिसको चाहा, वह पा न सके
जो गाना था, वह गा न सके
कितनी ही उलझन ऐसी हैं —
जिनको अब तक सुलझा न सके,
जो मंजिल चाही, मिल न सकी
भटके अनगिनत नगरिया जी!
छलके हर रोज गगरिया जी!

इक प्यास सदा मन में ढोई,
क्यों फसल बंजरों में बोई,
जब हमें जागरण करना था—
तब उम्र जवानी में सोई।
हम पूरब को घर से निकले
पश्चिम ले गई डगरिया जी!

क्यों सब सुख उन जैसा न हुआ?
क्यों जी भरकर पैसा न हुआ?
ये चाल—ढाल ऐसी क्यों है?
क्यों रूप—रंग वैसा न हुआ?
ये मैं, यह मेरी वाली हम—
बस ढोते फिरें गठरिया जी!

प्रभु ने जो दिया, दिया जी भर,
हम निभा सके ना उससे पर,

कुछ ऐसा–वैसा हो न कहीं–
हमने हर कदम रखा डरकर।
हमको मालिक हो जाना था
हम करें मगर नौकरिया जी!

यूं तो हर रोज बुना हमने
उम्मीदों का ताना–बाना,
छाया बस मिली खजूरों की
आया मीलों तक वीराना,
जो उमड़–घुमड़ कर आई थी,
बरसे बिन उड़ी बदरिया जी।

गजल जो पास न होते

जीवन जो सुख–दुख देता है
उसे किस तरह गाते हम?
गीत–गजल जो पास न होते
घुट–घुट कर मर जाते हम!!

कभी मिलन की उन घड़ियों में
दिल में ज्वार उमड़ता जब,
कभी विरह की तेज धूप में
तन–मन कहो झुलसता तब,
भावों के झंझावातों से
कैसे जान बचाते हम?

सीना ताने खड़ीं बुराई
हमको आंखें दिखलातीं,
हाथ पकड़ कर बार–बार ही
अंध–कुएं में ले जातीं,
अंधकार को तब फिर कैसे
आईना दिखलाते हम?
मौसम होते बुझे–बुझे सब
थके–थके उत्सव होते,
मस्ती के, उल्लासों के पल
तब कैसे संभव होते?
कोई सुर, लय, ताल न होता
केवल शोर मचाते हम!

ये रिश्ते न होते !

न जीवन में खुशियों की होती फुहारें,
न मन को लुभातीं कभी भी बहारें,
नहीं धूप में हमको छाया ही मिलती,
न मन में जमी बर्फ फिर–फिर पिघलती,
जो जीवन में दुख हमको रह–रह सताता–
तो सिर किसके काँधे पे रखकर के रोते ?
अगर जिन्दगी में ये रिश्ते न होते !

ये रिश्ते हैं, धागों से बाँधे रहे हैं,
ये रिश्ते हैं जो हमको साधे रहे हैं,
कभी वक़्त ने ठोकरों से गिराया,
तो रिश्तों ने ही बढ़के हमको उठाया,
हम अपनी सलीबें उठाते स्वयं ही–
हम अपने ही कंधों पे खुद उसको ढोते!
अगर जिन्दगी में ये रिश्ते न होते !

रुदन में भी रिश्ते हैं कलरव में रिश्ते,
जीवन के हर एक उत्सव में रिश्ते,
है रिश्तों की महिमा का कोई न सानी,
है रिश्तों से जीवन की मधुमय कहानी,
किसी रास्ते पे न दिखता उजाला–
न आशाएँ होतीं, न सपने सँजोते!
अगर जिन्दगी में ये रिश्ते न होते !

◆

पता : स्ट्रीट–2, चंद्र विहार कॉलोनी (नगला डालचंद),
क्वारसी बायपास, अलीगढ़– 202002
मो. : 9258779744

गलियां

सार्थक सक्सेना

यही गलियां किसी दूर बशर को घर बुलाती हैं,
यही गलियां कभी अपने को भी दूर ले जाती हैं।
इन्हीं गलियों में बच्चों की चंचलता झलकती है,
इन्हीं गलियों में अनुभव की धूप चमकती है।

इन्हीं गलियों में नन्हें पाँव पड़े थे,
वो अब बड़े हो चले हैं,
कोई अब भी यहीं ठहरा है,
कोई दुनिया की रफ्तार में खो गए हैं।

घरों के चेहरे बदलते गए,
पर गलियां न बदलीं,
ना बदले वो मकान,
हां, मंजिलें ऊँची कर ली कई लोगों ने,
पर नींव वही रही – अडिग, पहचान।

हर मोड़ पर खुलती है एक नई गली,
फिर भी हर गली हमआहंग सी लगती है।
हर गली की अपनी दास्तां है,
इसलिए सब एक सी होकर भी जुदा सी लगती हैं।

◆

पता : सचिवालय कॉलोनी, टिकैतराय, लखनऊ–226017
मो. : 7042415200

शब्द कभी मरते नहीं

नमिता वैश्य

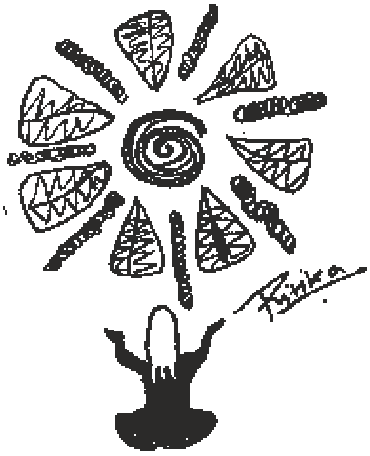

शब्द कभी मरते नहीं,
शाश्वत विचरण करते हैं।
कभी मौन में व्यक्त होते हैं,
कभी कोलाहल में तैरते हैं।
शब्द नदी बन बहते रहते,
जीवन की अविरल धारा में।

मन की देहरी पर,
भावनाओं की अभिव्यक्ति हैं शब्द।
शब्द बोलते हैं, भेद खोलते हैं,
शब्दों में छिपे हैं मोती फूलों के,
और तीर–तलवारें भी।
शब्द हृदय में चुभते भी हैं,
और मिटाते मन की पीड़ा।

शब्दों से भाषा बनती है,
भाषा भाव विचारों से।
शब्द न हों तो, जादू कैसा,
शब्दों का ही हेर–फेर है।
कभी चाशनी से मीठे हैं,
कभी नीम से कड़वे शब्द।
शब्द बनाते रिश्तों का पुल,
शब्दों की ताकत अनमोल।

शब्द भाव हैं, शब्द प्रेम है,
शब्द प्रार्थना, भक्ति, शक्ति।
शब्द हँसाएं, शब्द रुलाएं,
सुख–दुःख का कारण हैं इनसे।
शब्दों की मर्यादा होती,
शब्दों में दिखता व्यवहार।
हृदय जीत लें, पल में चाहे,
शब्दों का अद्‌भुत है खेल।

शब्द राग है, शब्द गीत है,
शब्द ही माँ की लोरी है।
अंधियारों में राह बनाते,
जीवन को संबल देते हैं।
शब्द आत्मा की वाणी हैं,
शब्द प्रेरणा का संगीत।
शब्द आदि हैं, शब्द अंत हैं,
मिटकर भी ये कभी न मिटते।

◆

पता : मसकनवा, गोण्डा,
उत्तर प्रदेश –271305
मो. : 9997478210

वेदना

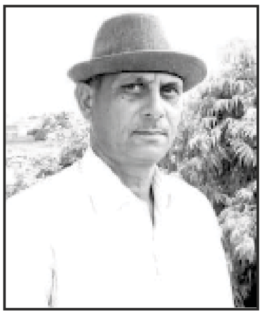

समरपाल सिंह

चुपचाप बैठा हूँ यादों की छाँव में,
मन रो रहा है एक सूनी ठाँव में।
टूटे हुए सपनों की किरचें चुभी हैं,
बिखरे अरमानों की साँसें रूँधी है।

हर धड़कन जैसे बोझ उठाए हो,
आँखें भी जैसे आँसू छिपाए हों।
जिसे अपना समझा वह दूर हुआ,
मेरा सारा संसार ही चकना चूर हुआ।

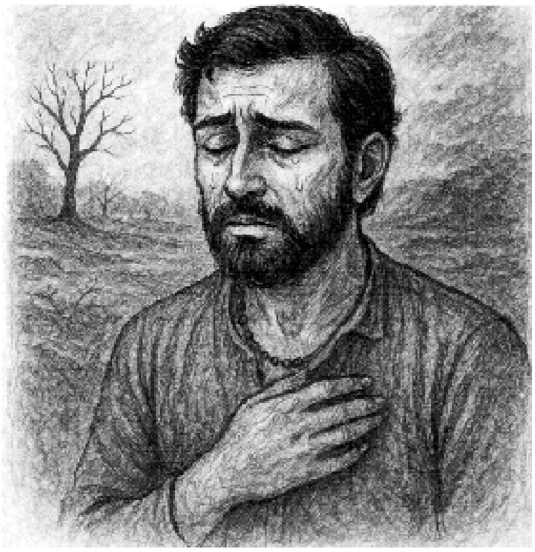

न बोल सका, न रो सका मैं,
हर एक दर्द को पी सका मैं।
मुस्कान थी जो अब धुँधला गई हैं,
जीवन की लौ भी अब थरथरा रही है।

तेरी यादें अब मेरी धाती है,
वो ही हर रात मुझे रुलाती है।
क्या दोष था मेरा, क्या गुनाह किया,
जीवन की मझधार में मुझे डूबो दिया ?

चला जा रहा हूँ मैं चुपचाप राहों में,
सिसकियों की धुन है, अब साँसों की बाहों में।
जीवन की किताब का अंतिम पन्ना आया,
हर शब्द में दर्द है, हर बूँद में साया।

जो सपने सीचें थे वर्षों की तपन से,
बिखर गए वो सब आपसी सिकन से।
अपनों की भीड़ में था मैं अजनबी सा,
हर हँसी के पीछे रूदन था गहरा सा।

संध्या की बेला में जब तन थक गया,
मन भी तज कौलाहल अन्यत्र चला गया।
एक–एक कर साथ छूटता गया सभी का,
रहा मैं बस साया अपने ही अस्तित्व का।

अब स्वाँसें धीमीं हैं, दृष्टि भी धुँधलाई,
यादों की परछाइयाँ बस रह–रहकर आईं।
काई नहीं पूछता क्या चाहता है मन ?
अब उत्तर भी खो गया हुआ मौन जीवन।

जीवन के अन्तिम पायदान पर खड़ा हूँ,
चिरनिन्द्रा के द्वार अब निडर पड़ा हूँ।
न शिकवा है किसी से, न कोई शिकायत,
बस एक खालीपन और आश्रु की आवत।

जाना है वहीं जहाँ सबको जाना है,
माटी में मिलकर ही अन्तिम ठिकाना है।
मेरी वेदनाएँ ओढ़ कफन यहीं रह जायेंगीं,
'आँसू' बनकर किसी की आँखों में आयेंगी।

◆

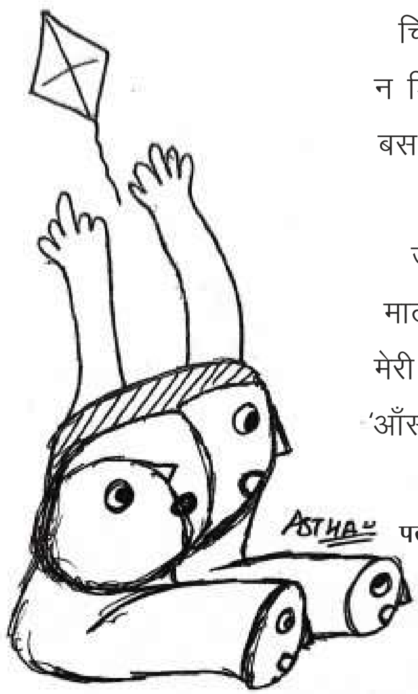

पता : पिदौरा रोड, मारहरा, एटा–207401
मो. : 9456037283

प्रेम को ओढ़ लो

प्रिंस लेनिन

सुनो लड़कियों
तुम्हारी पलकों पर जो चुप्पियाँ हैं,
वे केवल मौन नहीं
वे पीढ़ियों की परछाइयां हैं
उन्हें किसी उजले मेले में
नीलाम कर आओ

प्रेम को ओढ़ लो
जैसे भोर की पहली धूप
न शर्त, न अनुमति,
बस उतनी सहजता से प्रेम करो
जितनी सहज है सांस लेना

हर उस नायिका को
नया नाम दो
जिसने "ना" कहा या विद्रोह किया
और दुनिया ने उसे
बुरी औरत ठहरा दिया

देह का अधिकार
बाहर से नहीं, भीतर से आता है
यह देह
विवाह, कुल या वंश की जागीर नहीं
यह उस आत्मा की है
जो इसमें निवास करती है

अमलतास और गुलमोहर को
पाठशाला की दहलीज पर रोप दो
जहां बेटियां
न केवल झुकना
बल्कि उठना भी सीखें

इतिहास के पन्नों से
धूल झाड़ो
रजिया सुल्तान को
केवल "इकलौती महिला शासक" कहने की बजाय
उसे उस सिंहासन पर बैठाओ
जहां शासक केवल लिंग नहीं
बल बुद्धि से पहचाने जाते हैं
प्रेम की गणना मत करो
कि कितनों से किया
यह देखो
क्या कभी स्वयं से भी किया?

हर स्त्री के हृदय में
एक नन्ही–सी चिंगारी रख दो
जो समय आने पर
सिर्फ आग न बने
बल्कि पूरा दृश्य ही बदल दे

हाँ,
दुनिया इसे कहेगी
विद्रोह, उन्माद,
या कदमों का बहक जाना
पर तुम जान लो–
यह तुम्हारा सौंदर्यपूर्ण अधिकार है।

◆

पता : 4, राम रहीम स्टेट, मलाक रेलवे क्रॉसिंग के पास,
नीलमथा, लखनऊ226002
मो. : 9415184535

गुमशुदा की तलाश

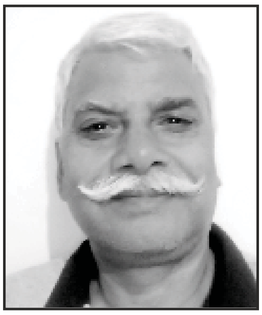

रविन्द्र सिंह पंवार

सज्जनों !!
एक गोरी चिट्टी, दुबली–पतली लड़की,
जिसकी उम्र कुछ हजार साल है, भ्रम के अन्धकार में गुम हो गयी है।
बहक जाना, भटक जाना, लालच में फिसल जाना,
क्षणिक स्वार्थ के चक्कर में घर से निकल जाना–उसकी आदत है।
अपना घर छोड़कर सुख की तलाश है,
मन सदा अशांत है, आत्मा निराश है– उसकी फितरत है।
कुछ लोग कहते हैं :
'फूट डालने वालों ने उसे गर्त में धकेला है'
अपनों से दूर हुआ जीवन अकेला है।
सुख का लालच देकर दुष्टों ने फंसाया है,
छल, प्रपंच और कपट मन में बसाया है– कुछ का कहना है।
झूठा प्रेम, झूठा लालच क्यों घर से भटकी?
आसमान से क्यों गिरी? खजूर पर क्यों अटकी?– कुछ का कहना है।
हर हृदय विचलित है, हर हृदय में आह है।
परिवार में हर क्षण पीड़ा की कराह है।
आँखें निराश हैं– साँसें उदास हैं, रिश्ते बिखर से गये हैं।
महापुरुषों के सन्देश– 'जिन प्रेम कियो तिनही प्रभु पायो'
दीवारों और स्टीकरों पर ठहर से गये हैं।।
पता देने वाले को मार्ग व्यय के अतिरिक्त
पुरस्कार भी दिया जाएगा।
लड़की का नाम है "एकता"।।

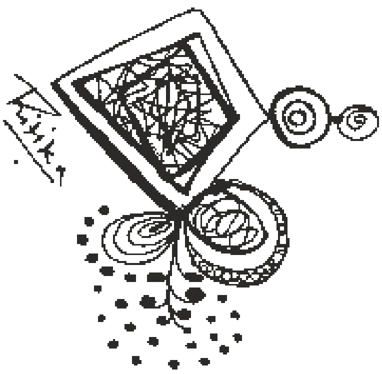

◆

पता : डी–1/216, संगम विहार, नई दिल्ली–110080
मो. : 9810318136

जादू का पिटारा...

अनिता रश्मि

बच्चे ने खोली आँखें
औ
स्कूल में दाखिले की फिक्र
समा गई
माता–पिता के
स्वप्निल आँखों में
भविष्य के गढ़ लिये
किले तत्काल
बचपन की नींव पर
बचपना खोता बच्चा
जादू का पिटारा
बनने लगा

फाइव इन वन
बनाने की
पूरी कवायद हो गई शुरू
बच्चा अपने नहीं,
अपने अपनों के
सपने जीता है
सुपर मॉम की तरह
सुपर चाइल्ड बनने के लिए
वह भी है अभिशप्त आज।

गौरैया

घरों में नहीं आती गौरैया
अँगना गया गुम
वह भी गई रूठ
घर में नहीं गूँजती
चहचहाहट
अब
न गौरैया की
न बच्चों की
हमने बड़े जतन से
वर्षों से
चहचहाहटों को
जिंदगी से अपने
कर रखा है दूर

जैसे कर दी हो
जिंदगी ही दूर।

प्रेम से ही बचेगी दुनिया

मुश्किल था बहुत
उससे दूर जाना
जाकर भी वापस न आना
और यह मुश्किल
उसने
बहुत आसानी से निभाई
पर खो न सका
दुनिया की भीड़ में
साथी ने जलाए रखा
प्यार को अपने

जैसे जलाए रखते हम
बरसों—बरस
नफरत की बाती को।

कोई मुश्किल भी नहीं,
प्यार को जिलाए
जलाए रखना
ताउम्र,
ऊपरवाले ने
दुनिया तो प्रेम से ही
बसाई थी
हमने नफरत की वजहें
ढूँढ डालीं।

पिता

नहीं परिभाषा कोई,
न बाँध सकते
शब्दों की गिरह में
गगन से ऊँचे
सागर से गहरे
उदारता से ज्यादा उदार
चिंता से अधिक चिंतित
चुप्पी से ज्यादा चुप
मुखरता से अधिक मुखर
पिता को
'औ'
उनके अबोले प्रेम को
शब्द नहीं
प्यार में उनके
होते बस एहसास

नमक की तरह
जरूरी पिता
हमारे इर्द—गिर्द मंडराते
सुरक्षा कवच में ढल
हम घुटरनूँ चलते हुए
बढ़ रहे होते हैं जब,
तब भी जब
चढ़ रहे होते ऊँचाइयाँ

फिर
मिचमिची आँखों से देखते
अति वृद्ध पिता
गुनते—सुनते
जमाने के नए
रंग—ढंग, चलन
खामोशी की ढाल तले
ढँक लेते
दोष बच्चों के
हमेशा की तरह,
आसमान से असमय
बरसनेवाली बूँदों के जैसे
ढलते रहते तब
पिता के आँसू!

बोलती नहीं चुप्पी अब
एक भूला एहसास
बन रह जाते
गाँव की गलियों में
खेतों की मेड़ों पे
अँगना की खटिया पर
एकाकी
भेजकर बेटे को विदेश,
बेटी को ससुराल
पत्नी को सूखती नदी के तट वाले
श्मशान घाट
पिता रेत बन बिखर जाते।

◆

पता : 1 सी, डी—ब्लॉक, सत्यभामा ग्रैंड, कुसई,
डोरंडा, राँची, झारखण्ड—834002
मो. : 9431701893

ग़ज़ल

नसीमा लख़नवी

जब भी मायूसी दिल में आती है
ज़ीस्त ख़्वाबों से जगमगाती है।

कट के दुनियाँ से किस तरह जीती
ये हमेशा मुझे लुभाती है।

ग़म ही ग़म है हयात में मेरी
कब खुशी ये मुझे सुनाती है।

मिश्ल दरिया है ज़िन्दगी मेरी
आँसुओं में सदा नहाती है।

जब भी आँखों को खोलती हूँ मैं
दुनियां मंजर नये दिखाती है।

क्या नसीमा ये बांटती है ग़म
दुनियां तो मुझ पे मुस्कुराती है।

◆

पता : 512/411, लक्ष्मण दास बिल्डिंग, निशातगंज,
लखनऊ–226007, उत्तर प्रदेश
मो. : 7388899157

ग़ज़ल

शाज़िया ख़ान

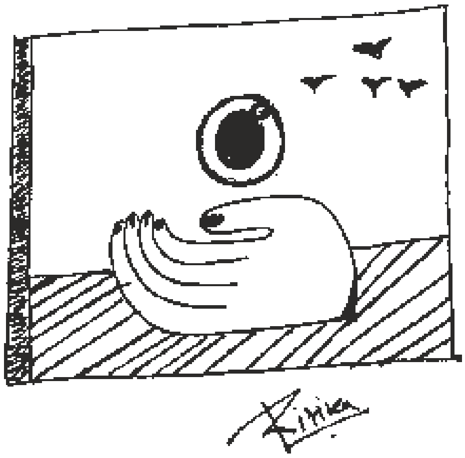

दर्द मन्दों का सहारा बनकर
कोई आया है हमारा बनकर
उसके आने से समा बदला है
आ गया वह है नज़ारा बनकर
डूबती नाव हम परेशां थे
आ गया है वह किनारा बनकर
आके उसने दिया सहारा हमें
थाम कर हाथ हमारा बनकर
ज़िन्दगी डूबी थी अंधेरे में
आ गया है वह उजाला बनकर
सबका जिसका ख़्याल रहता है
साथ रहता है हमारा बनकर
शाज़िया की उदास राहों में
आ गया है वह सितारा बनकर

◆

पता : लक्ष्मण दास बुलिंग, चौथी गली, निशातगंज, लखनऊ–226007

मो. : 8887984564

चंदन किवाड़ : लोक गायिका मालिनी अवस्थी

❑ विजय कुमार तिवारी

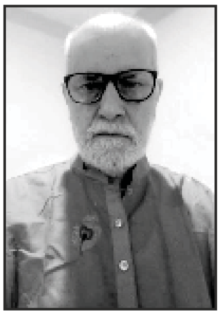

लोक गायिका, सुरों की मलिका, हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की ज्ञाता आदि न जाने कितने साहित्यिक–सामाजिक अलंकरणों से अलंकृत मालिनी अवस्थी देश व दुनिया में अपनी लगन व कला के बल पर खूब पुरस्कृत, सम्मानित और समादृत हैं। वह देश की सुप्रसिद्ध लोक गायिका हैं जिनका जन्म उत्तर प्रदेश के कन्नौज में हुआ है। भारतखंडे संगीत संस्थान लखनऊ से उन्होंने शिक्षा प्राप्त की और वह बनारस की पौराणिक हिंदुस्तानी शास्त्रीय गायिका, गिरिजा देवी जी की शिष्या रही हैं। उनकी शादी वरिष्ठ आईएएस अधिकारी अवनीश अवस्थी से हुई है। वह हिन्दी भाषा की बोलियों जैसे अवधी, बुंदेली और भोजपुरी में गाती हैं तथा दादरा, ठुमरी और कजरी गायन पर उनका विशेष अधिकार है। सभी पर्व–त्यौहारों पर अपनी प्रस्तुतियाँ देती हैं। भारत सरकार ने उन्हें नागरिक सम्मान पद्म श्री से सम्मानित किया है।

हाल ही में लिखी उनकी पुस्तक ''चंदन किवाड़'' मेरे सामने है जिसे कथाकार रामनगीना मौर्य जी ने भेजा है। मालिनी ने इस पुस्तक को ''अपने मन का प्रवाह, आसपास के परिवेश के देखे, जिए, अनुभूत लोकचित्र, लोक से प्रेरित अभिव्यक्ति, लोक यानी आप सभी'' कहा है। वह स्वयं लिखती हैं– ''यहाँ हर उस घर के किरदार हैं, जहाँ लोक–संस्कृति की संवेदना है, जहाँ सामाजिक चिन्तन के सजग प्रहरी हैं। यह जीवन व्यवहार से अपने संगीत को समर्पण है। यह चंदन का किवाड़, दर असल लोक का किवाड़ है जो अपने सुवास से चंदन की सुगन्ध लिये हुए परम्परा में हजारों साल से स्त्रियों के सजल कण्ठ को भरोसा व विश्वास दिलाए रखता है। इसके दरवाजे पर मैं, संगीत में सखी–भाव से खड़ी हूँ और शायद अपनी साधना और शिक्षा के अनन्त काल तक खड़ी रहने की कामना करती हूँ।''

सूर्यबाला जी ने इस ग्रंथ को उनकी 'स्मृति–कथाओं की मंजूषा' लिखा है। मालिनी ने इस पुस्तक को अपनी पूजनीया माँ निर्मला अवस्थी जी को समर्पित किया है। यतीन्द्र मिश्र ने अपनी प्रस्तावना ''गंगा–तट पर झिलमिलाती दीपशिखाएँ–'' में सम्यक चिन्तन करते हुए लिखा है–''मालिनी अवस्थी ने परम्परा, लोक, शास्त्र, साधना और कला अभ्यास की सतरंगी वेणी गूँथते हुए कुछ वैसा रच दिया है, जैसा रूद्र काशकेय 'बहती गंगा', नवनीता देवसेन 'किस पथ आये तुम्हारी करुणा' में जीवन का मर्म उद्घाटित करते हैं। स्वयं मालिनी ने विस्तार से ''अपनी बात'' में इसे लोक–गायन की अपनी यात्रा, अपना संघर्ष व सौभाग्य लिखा है। पाठकों को

चाहिए कि मिश्र जी की प्रस्तावना और मालिनी की 'अपनी बात'' ध्यान से पढ़ लें। ये सामान्य संस्मरण नहीं हैं, बल्कि एक कलाकार का जीवन संघर्ष है, लोक संगीत के प्रति समर्पण है और एतदर्थ स्वयं को तपाते हुए होम कर देने की गहन भावना है।

'चंदन किवाड़' को मालिनी अवस्थी ने अपने 27 संस्मरणात्मक पुष्प–गुच्छों से सजाया है और लोक हित में देश–दुनिया को परोस दिया है। ये संस्मरण अत्यन्त मार्मिक हैं जिनमें भक्ति है, श्रद्धा है और जीवन के अनेकानेक सुखद संयोग हैं। हर पाठक इस ग्रंथ को पढ़ते हुए आत्म–विभोर तो होगा ही, बहुत कुछ श्रेष्ठ, वरेण्य, श्रेयस्कर करने के लिए प्रेरित भी होगा।

भिलाई के कार्यक्रम में एक 10 वर्षीय बच्चे द्वारा तेजी से मंच पर आना, हाथ में 10 रुपये का सिक्का समर्पित करना, चरण स्पर्श करना और मालिनी जी का भावुक होकर रो पड़ना कोई सामान्य घटना नहीं है। उन्होंने इस प्रसंग को लेकर जिस तरह चिन्तन किया और लिखा है,वह अत्यंत महत्वपूर्ण है, आज हम पढ़ रहे हैं और सुखद अनुभव कर रहे हैं। 1997 में बेटी अनन्या द्वारा आलू बुवाई का प्रसंग मालिनी को लोक–संस्कृति की समझ दे जाती है कि देवी–पूजन शक्ति की पूजा है और शक्ति से ही जीवन है। उन्होंने इस लेख में अनेक पौराणिक प्रसंगों को उद्धृत किया है और विस्तार से अनेक देवी मैया की उपासना के गीतों का उल्लेख किया है।

मालिनी अवस्थी ने देश व दुनिया के कोने–कोने में अपनी प्रस्तुतियाँ दी हैं, लोक मानस को खूब हलराया, दुलराया और भाव विह्वल किया है। एक ओर यह उनकी संगीत साधना का श्रीफल है तो दूसरी ओर भारतीय संस्कृति की महानता का परिचय भी है। अमेरिका के फ्लोरिडा में पितृ–पक्ष के अवसर पर पितरों को न्यौतते हुए उन्होंने गीत गाया, लोगों की आँखें भर आयीं। वह लिखती हैं–''सनातन संस्कृति इसलिए श्रेष्ठ है क्योंकि वह अपने अतीत का सिरा पकड़कर भविष्य में प्रवेश करती है। पूर्वजों के लिए प्रार्थना का भाव, कृतज्ञता का भाव, क्षमा–याचना का भाव यह मनुष्यता का सर्वोच्च वैशिष्ट्य है।'' इस लेख में उन्होंने पितरों,पुरखों को लेकर विस्तार से लिखा और अपने पिता को याद किया है। आल्हा–उदल सहित अनेक राजाओं के युद्ध और पितृ भक्ति के चमत्कृत करने वाले प्रसंगों का उल्लेख उनके गहन अध्ययन को दर्शाता है। भिखारी ठाकुर की रचना 'बिदेसिया' को वह भोजपुरी लोक साहित्य की थाती मानती हैं और अक्सर मंचों पर गाया करती हैं।

यहाँ हर शीर्षक किसी न किसी लोकगीत की धुन से जुड़ा है और उनके भीतर वर्णित मार्मिक प्रसंग भावुक करते हैं। वैसे तो माँ गंगा के दर्शन मात्र से मुक्ति मिल जाती है परन्तु मालिनी के लिए बनारस में बहती धवल माँ गंगा मोक्ष का द्वार है। उन्होंने अनगिनत बार भोले बाबा के द्वार पर गायन करते हुए, हर बार अतिरिक्त आनन्द का अनुभव किया है। उन्होंने लिखा है–''आधी रात में गंगा जब मूर्त रुप धारण करती है,शिव उन्हें देख मोहित होते हैं, गंगा से प्रेम की भीख माँगते हैं।'' यह प्रसंग रोचकता के साथ–साथ प्रेम की अद्‌भुत व्याख्या करने वाला है।

उन्होंने 'जादू की पुड़िया भर–भर मारी' संस्मरण में अपनी गुरु अप्पा के लखनऊ के उनके ही घर में प्रवास के समय की मृदुल, सहज स्मृतियों को सँजोया है और गुरु–शिष्या परंपरा के महत्व को दिखाया है। वह लिखती हैं–''वे सच्ची गुरु थीं– जीवन के सभी रहस्यों की गाँठ खोलने वाली उदारमना अनुभवी गुरु।'' इस लेख में श्रृँगार रस को लेकर उनके विचार को समझने की जरुरत है–''कला में,गायन में श्रृँगार की जैसी व्याप्ति है, वैसी अन्य रसों की नहीं।'' इसे वह 'सत्यं शिवम् सुन्दरम्' की ऊँचाई तक अनुभव करती हैं। श्रृँगार और नारी को लेकर उनका भाव–विचार बहुत गहरा है और उन्होंने अपने लेखों में बार–बार समझाने का प्रयास किया है। 'चाँदनी छिप जइहो अटरिया', 'मोरे सेनूरा से तोरा भाग' जैसे संस्मरण में उनके अनुभव, ज्ञान और पारिवारिक, सामाजिक जीवन के सौन्दर्य का वर्णन है। ''काहे को ब्याही बिदेश'' विरह गीत है, मालिनी को खूब पसंद है और उन्होंने लोकगीतों में विरह–वेदना की भावना को खूब प्रदर्शित किया है।

'ऐसा ही हास्य और प्रेम से भरा गीत–'सैंया मिले लरकईयाँ', अक्सर उनसे सुना जाता है जिसमें प्रेम और परिवार के अन्तःसम्बन्ध का आदर्श चित्र उभरता है। मालिनी ने अनेक संस्मरण लिख डाले हैं इस सदाबहार गीत को लेकर। ''वह कभी ऊबती नहीं?'' के उत्तर में उन्होंने अपने पति अवनीश से कहा था–''नहीं! जब–जब गाती हूँ, हर बार तुम याद जो आते हो।'' ऐसी ही हैं मालिनी अवस्थी और ऐसा ही है उनका गायन। उनका एक चर्चित गीत है

''कचौड़ी गली सून कइला बलमू'', जिसे बार–बार सुनाने की माँग होती है और वह हर बार सुनाते हुए भाव–विभोर हो उठती हैं। सुहाग बरसे बन्नी तोरे अँगनवा, साँवरिया मुफ्त भई बदनाम और सारी कमाई गँवाई रसिया, अदालत में दावा करुँगी रसिया जैसे गीतों को गाकर मालिनी अवस्थी ने लोक गायन में धूम मचा दी है।

'छापक पेड़ छियुलिया' सोहर गीत है, शिशु आगमन के समय गाया जाने वाला मंगल गीत जिसमें हिरनी की व्यथा की कथा है। ऐसा ही एक गीत 'सिया को जनम भयो' है जो सीता माँ के जन्म की स्मृति में गाया जाता है। उन्होंने सन 2000 में हुए मॉरिशस के सम्पूर्ण विश्व भोजपुरी सम्मेलन का प्रसंग लिखा है, जब बाबूजी यानी पं. विद्या निवास मिश्र जी का सान्निध्य मिला था। वे सभी लोग मॉरिशस के प्रसिद्ध लेखक अभिमन्यु अनत के घर भी गए थे। बाबूजी ने तब कहा था, ''देखो मालिनी, हमारी लोक परम्परा की सच्ची ध्वजवाहिका स्त्रियाँ ही हैं। उन्होंने ही सदियों रक्षा की है इस धरोहर की।''

स्त्री मन की पुकार, तड़प और बेचैनी के अनेक गीत मालिनी ने गाए हैं जिनका प्रभाव जन–मन को आंदोलित कर देता है। रेलिया बैरन पिया को लिए जाए रे, मत जा,मत जा जोगी, काहे सतावो मोहे साँवरिया, तड़प–तड़प जिया जाये, चले जइहो बेदर्दा जैसे विरह के गीत स्त्रियों के मन की भाव–दशा से जुड़ते–जोड़ते हैं। ऐसे गीतों को प्रस्तुत करना सहज नहीं है जिसे उन्होंने बार–बार सफलता पूर्वक मंचित किया है। 'निमिया के डाढ़ मैया' उनका भक्ति से भरा गीत है जो गाँव–गाँव में सुना जाता है। उनके गायन की विशेषता है, वह हर प्रसंग को अपनी कला से जीवन्त कर देती हैं और जीवन के सारे रस मूर्त हो उठते हैं। ''बाँट दियो अँगनवा हम संग नाहीं रहिबे'' घर–घर की पीड़ा की कहानी है। घर–परिवार,खेत–खलिहान बँटते हैं, स्त्रियाँ व्यथित होती हैं और इसमें उनकी भूमिका महत्वपूर्ण रहती है। वे घर सम्हालती हैं,बाल–बच्चों को पोसती–पालती हैं और पति के साथ जाने से इनकार कर देती हैं।

हमारे ग्रामीण जीवन में गोदना गोदने का प्रचलन है। कृष्ण और राधा को लेकर अनेक गीत गाए जाते हैं। मालिनी ने भी ऐसे गीत गाए हैं और प्रेम प्रसंग को खूब जीवन्त किया है। यहाँ उन्होंने जाति–प्रथा से जुड़े प्रसंग को भी लिखा है और अपने भाव–विचार व्यक्त किए हैं। प्रकृति के साथ–साथ हमारा जीवन रचा–बसा रहता है, उनके गीतों में प्रेमी–प्रेमिका, पति–पत्नी के बीच की मधुरता, हास–परिहास आदि के दृश्य खूब उभरते हैं। शादी–विवाह में समाज के हर वर्ग को सम्मिलित किया जाता है और उन्हें आदर मिलता है। वैसे ही उनका लेख ''मेरा बीड़ा है मजेदार'' जीवन के नाना सन्दर्भों को रेखांकित करता है। मालिनी ने लिखा है–विवाह दो तत्वों का मिलन है, देह और आत्मा का योग, जहाँ प्रेम और विश्वास ही रिश्ते का ईंधन है। आदिकाल से पति–पत्नी के सम्बन्ध को पूर्ण शारीरिक–मानसिक समर्पण का अधिकार मिला है, इस सम्बन्ध में रति भावना के साथ ही मैत्री एवं अन्योन्याश्रितता की भावना जुड़ी है। इस रिश्ते को लेकर उन्होंने अनेक प्रसंग के गीत गाये हैं और उनके आपसी हास–परिहास, मान–मनौव्वल, फरमाइशें आदि का जीवन्त स्वरुप लिखा है।

नवविवाहिता कहती है–'बूँदन भीजे मोरी सारी मैं कैसे आऊँ?' उसे यह भी भय है यदि नहीं गई तो प्रेम के खोने का भय है। 'चल हंसा वाही देश' लेख में मालिनी ने एक माताजी की यादें लिखी हैं जो कर्मठ थीं, साहसी थीं और अक्सर उनके घर आया करती थीं। 'छियो राम छियो' धोबी–धोबन के द्वारा गायन प्रसंग है जब वे नदी, तालाब में कपड़ा धोते हैं। यह गाँव–जवार में आज भी लोकगीत के रुप में प्रचलित है। मालिनी का संस्मरण आँखें खोलने वाला है। इस संग्रह का अंतिम लेख ''जैसे उनके दिन बहुरैं, वैसे सबके दिन बहुरैं'' शुभकामनाओं से भरा हुआ है। उनका भाव–प्रसंग यही है कि सबका कल्याण हो। कैसी अद्‌भुत कामना है यह! लोकमंगल की कामना–

समस्त चराचर जगत का जीवन सुखमय हो।

जैसे उनके दिन बहुरैं, वैसे सबके दिन बहुरैं।

ऐसे संस्मरण लोक गायिका के उदात्त चरित्र, उनके अध्ययन, उनकी साधना, जीवन भर के उनके अनुभवों को प्रदर्शित करने वाले और हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने वाले हैं। ◆

समीक्षित कृति : चंदन किवाड़
लेखिका : मालिनी अवस्थी
मूल्य : रु. 325/–
प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

पता : टाटा अरियाना हाउसिंग, टावर–2/201,
पोस्ट–घटकिया, भुवनेश्वर–751029, ओडिशा
मो. : 9102939190

अंजलि भर उजास उम्दा कहानी–संग्रह

❑ रत्नकुमार सांभरिया

माधव नागदा जनचेतना के लेखक हैं। वे अपने उम्दा साहित्य सृजन के लिए जाने जाते हैं। हिन्दी और राजस्थानी दोनों ही भाषाओं पर उनका समान अधिकार है और वे हिन्दी–राजस्थानी दोनों साहित्य अकादमियों से पुरस्कृत–समादृत हैं। उनके अभी तक पाँच कहानी–संग्रह, एक कविता–संग्रह, दो आलोचना पुस्तकें तथा डायरी की एक पुस्तक शाया है। बावजूद इसके, जिस विधा ने उनको मुकम्मल पहचान प्रदान की है, वह कहानी है। ग्रामीण पृष्ठभूमि और भावभूमि की उनकी कहानियाँ अपने सधेपन की संपृक्तता के कारण पठनीय हैं। कहना न होगा कि वे एक प्रतिनिधि कहानीकार हैं।

श्री नागदा के सद्यः प्रकाशित कहानी–संग्रह 'अंजलि भर उजास' में कुल 14 कहानियाँ संग्रहीत हैं। कहानियों के कथानक गाँव की वर्तमान स्थितियों का आईना है। कहानियों का यथार्थ बोध तप कर सामने आता है। गांधीजी ने 'गाँव की सत्ता, गाँव के हाथो' की जो कल्पना की थी और देहात को देश की आत्मा कहा था।

संग्रह की पहली कहानी 'बाबूलाल सरपंच का स्वच्छता अभियान' 'हंस' मासिकी के जून, 2024 में प्रकाशित हुई थी। 'हंस' में पढ़ते वक्त भी इस कहानी ने मुझे बेचैन किया था और समीक्षा लिखते वक्त भी बेचैनी से गुजरा हूँ। इस बेचैनी का हेतु है, बाबूलाल जैसे सरपंच भ्रष्टाचार की दीमक बन कर सरकारी पैसा के साथ–साथ गाँव की छवि को भी चट किये जाते हैं। सरकार की ओर से पूर्ण स्वच्छता प्रदान ग्राम पंचायत को 9 लाख रुपये की राशि प्रोत्साहन स्वरूप दिये जाने का प्रावधान है ताकि वह राशि गाँव के विकास कार्य में प्रयुक्त हो। बाबूलाल सरकार को प्रस्ताव भिजवाता है, जिसमें लालपुर गाँव की पूरी ग्राम पंचायत स्वच्छ हो चुकी है। गाँव में दस प्रतिशत घर ऐसे हैं, जिनमें अभी तक शौचालय ही नहीं बने हैं। गाँव का जगननाथ भोपा बाबूलाल का प्रतिद्वन्द्वी भी है और धुर विरोधी भी। बाबूलाल की धोखाधड़ी को लेकर वह उस

मीटिंग में यह बात रखना चाहता है, जहाँ कलेक्टर 9 लाख रुपये की राशि गाँव के सरपंच बाबूलाल को सौंपने के लिए आ रहे हैं।

भोपा के इस इरादे की भनक राजनीति के घाघ बाबूलाल को पड़ जाती है। वह एक दिन पूर्व ही भोपा के घर पहुँच जाता है। वह उसे सरसते—लुभाते चार आश्वासनों की डोज देता है। असरकारी डोज उसके बेरोजगार लड़के को ग्राम पंचायत में काम दिलवाना है। डोज के बाद भोपा को ऐसा बुखार आता है, होश ही नहीं रहता। बाबूलाल सरपंच को 9 लाख रुपये की राशि मिल जाती है। यह कहानी इस बात का सबूत है कि भ्रष्टाचार आँतों में अमीबा की तरह है। गाँव हो चाहे शहर हो।

आज ग्रामीण परिवेश इतना संवेदनहीन हो गया है कि चौक में पड़ी बिरजू की लाश को कोई कंधा देने नहीं आता है। 'शवयात्रा' कहानी का कथानक इसी प्रकार का है। बिरजू ने एक समय गाँव के चारभुजा मंदिर के लिए भावुकतावश 1100 रुपये का दान बोल दिया था। अभावों में जीते वह अपने इस वादे को पूरा करने में असफल रहा। ग्यारह सौ रुपये की वह राशि ब्याज सहित तीन हजार रुपये हो गई थी। गाँव वाले इस बात पर अड़े हैं कि राशि मंदिर में जमा हो तो लाश को कंधे मिलें। बिरजू के बेटे सरजू के पास एक खेत है, जो उसका जीवन आधार है। गाँव की नजर उसके उसी खेत पर टिकी है। ऐसे शोक के मौके पर सरजू खेत बेच देगा। यह संवेदनहीनता और स्वार्थ की पराकाष्ठा है। विपरीत इसके, सरजू न अपने खेत बेचता है और न ही गाँव की यह घिनौनी शर्त स्वीकारता है। वह साधन जुटा कर खुद ही अपने पिता का अंतिम संस्कार करने की ठान लेता है। कहने का आशय यह है कि मान—मर्यादा से सराबोर गाँव की वह आभा कहाँ है ? 'शवयात्रा' कहानी का यथार्थ इसका गवाह है।

कहानी 'धोलो भाटो, लीलो रूँख' में भी कठोर नियति है। गाँव का साधु जैसा निर्मल स्वभाव कहाँ गायब हो गया ? सूरत के साथ—साथ गाँव की सीरत भी इतनी बदल गई कि गंवई अपनी दुश्मनी निकालने के लिए पत्नी की आबरू को ही हथियार बनाने लगे हैं। कहानी पति—पत्नी के रिश्तों को तार—तार कर देती है। आक्रोशित और कुंठाग्रस्त भूरालाल अपनी पत्नी नाथी पर रोज—रोज इस बात को लेकर मारपीट करता कि वह उसके धुर विरोधी मगनिया पर बलात्कार का आरोप लगा दे ताकि उसे जेल हो सके। नाथी कंचन जैसी अपनी आबरू को खूब समझती है और मगनिया के उजले चरित्र से भी वह खूब वाकिफ है। लेकिन जब भूरा आत्मघाती कदम उठाने पर आमादा हो जाता है तो नाथी इस पाप का वरण करने को तैयार हो जाती है। उसे बार—बार एक ही शब्द रटाया जाता है— बलात्कार। बलात्कार। बलात्कार। वह वकील के माध्यम से कोर्ट में न्यायाधीश के सम्मुख पेश होती है तो 'बलात्कार' कह कर बेहोश हो जाती है। इस कहानी को पढ़ कर सआदत हसन मंटो की 'खोल दो' कहानी याद आ जाती है।

'साफ पानी की तलाश में' कहानी एक ऐसे चरित्र की कथा है, जो अपनी पुत्री की शादी में बेतहाशा खर्च करके शोहरत का प्रदर्शन करता है। अमुक महकमे का चौहान नामक वह अधिकारी भ्रष्टाचार में आकंठ डूबा है। विवाह की शान—शौकत के लिए विलायती दारू तो सर्व होती ही है, कोमलांगी नृत्यांगनाओं के नृत्यों का भी शो आयोजित होता है। गाँव से लेकर बाराती तक खुश, लेकिन हतप्रभ हैं। दूसरे लोग जहाँ इस भव्य आयोजन के लिए चौहान साहब को दाद दे रहे होते हैं कि आमंत्रित मेवालाल दुःखी होकर साफ पानी की तलाश में निकल पड़ता है। यहाँ साफ पानी, स्वच्छ परिवेश और ईमानदारी का व्यंजनात्मक बिंब है। यानी जब देश का जल और अन्न शुद्ध होगा तभी लोगों का मन शुद्ध होगा। कहानी यहाँ एक अच्छा संदेश छोड़ जाती है कि चौहान साहब जैसे लोग विभाग को बेतहाशा लूट कर भी कितने पाक—साफ हैं। उन्हें मेवालाल जैसे स्वच्छ छवि के लोग ही बेनकाब कर सकते हैं।

'साँझ की धूप' एक समझदार और द्रष्टा अध्यापक दिनेश से जुड़ी कहानी है। आज भी ऐसे गाँव हैं, जिनको शुद्ध जल मुहैया नहीं हो पा रहा है। पोखर का गंदला पानी पीने को विवश हैं। एक अन्य शाला से ट्रांसफर होकर इस गाँव के स्कूल में आए विज्ञान के अध्यापक दिनेश को जब पानी भरा गिलास पकड़ाया जाता है तो वह उसे नींबू की

शिकंजी समझ बैठते हैं। मालूम पड़ने पर कि वह पोखर का गंदला पानी है। अध्यापक दिनेश गहरे अफसोस में डूब जाते हैं कि देश को आजाद हुए इतने दशक बीत गए और यहाँ ग्रामीण पोखर का गंदा पानी पीते हैं।

दिनेश प्रगतिशील है और उसकी सोच प्रयोगधर्मी है। वे फिटकरी मँगवाते हैं। स्कूल में पानी के जितने भी घड़े रखे हुए थे, वे उन सब में फिटकरी डलवा कर पानी को पीने योग्य बनवाते हैं। उसके बाद गाँव के सरपंच ग्रामवासियों को साथ लेकर गाँव में घूम कर मुख्य घाट से भी गंदगी साफ करवा दी जाती है। ग्रामवासियों से वे निवेदन करते हैं कि पानी के स्रोतों के निकट गंदगी न फैलायें। इस प्रकार गाँव को साफ–सुथरा पानी मुहैया होने लगता है। साइंस के वे अध्यापक पूरे गाँव के लिए एक नजीर बन कर सामने आते हैं। गाँव में आया यह परिवर्तन कथाकार की नई दृष्टि है।

जाति से चाहे कोई कितना बड़ा हो जाए, वक्त से आगे नहीं निकल सकता। कहानी 'शापमुक्ति' के मुख्य पात्र पंडित हरिशंकर वक्त के इसी भंवर का हिस्सा हैं। वे एक समय तन–मन से तंदुरुस्त थे। पैसों के लिहाज से खुशहाल थे। उनके जीवन का यह एक सुखद पक्ष है, जो उनको सुखों में भिगोये था।

उनकी जिंदगी का दूसरा पहलू इस प्रकार है कि उनके तीन लड़के हैं, जिनमें से एक की पत्नी सजातीय है। नौकरीपेशा अन्य दो बेटों की पत्नियाँ विजातीय हैं। ये अन्तर्जातीय विवाह उन्होंने जाति नहीं, एक–दूसरे की शैक्षणिक योग्यता और भविष्य का उज्ज्वल पक्ष देख कर किये थे। पंडित हरिशंकर को यह पाप पंक जैसा महसूस होता था कि दोनों बेटों ने धर्म और जाति की मर्यादा का उल्लंघन किया है। दोनों बेटे सपत्नीक बाहर जाकर रहने लगते हैं। अपने लड़के और सजातीय बहू के साथ रहते हरिशंकर की स्थिति दिनोंदिन इतनी दयनीय होती जाती है कि हाथ में कटोरा लेकर मंदिर के सामने बैठने को विवश हो जाते हैं। आखिरकार वे अपनी उन्हीं विजातीय बहुओं के पास चले जाते हैं। उनको वहाँ पितातुल्य सम्मान मिलता है। जाति को चोटी की गाँठ से बाँध कर रखने वाले पण्डित हरिशंकर का हृदय परिवर्तन कहानी का उजला पक्ष है।

युवा पीढ़ी का ख्वाब यह है कि वह बी.ए. करते ही कलेक्टर बनने के सपने संजोने लगती है। 'जिंदगी के मोर्चे पर' कहानी का कथानक विनोद नामक युवक के इसी सपने को लेकर बुना गया है। विनोद नई पीढ़ी का ऐसा ही एक नवयुवक है, जो आईएएस बनने की सनक में अपना समय और परिवार का पैसा बर्बाद करता जाता है। परिवार दुःखी होकर भी विवश है। विनोद जब अनवरत परीक्षाएं देने पर भी सफल नहीं होता है तो वह फौज में भर्ती होने के लिए उस मैदान में जाकर खड़ा हो जाता है, जहाँ भर्ती हो रही होती है। बेरोजगारी से बेजार युवकों की भीड़ को काबू करने के लिए पुलिस लाठी चार्ज कर देती है। एक लाठी विनोद को लगती है। बेहोशी की हालत में उसे अस्पताल में भर्ती करा दिया जाता है। आइ.सी.यू. में जब उसे होश आता है तो घर वालों की ओर से उसे वह पत्र दे दिया जाता है, जो इंस्पेक्टर पद के लिए उसके चयन का है। दुःखों भरी इस कहानी का सुखद अंत होता है।

इसी प्रकार श्री नागदा की 'छिलके' कहानी अपनी सुंदर बुनावट के कारण पाठक को आकर्षित करती है। 'बूढ़ी आँखों के सपने' नयेपन का सृजन है। 'मुक्तिपथ' जीवन के अप्रतिम पक्ष को सामने लाती है। 'खोई हुई हँसी' नये जीवन जैसा अहसास देती है। 'अकाल और खुशबू' में एक ऐसे परिवेश की गंध है, जो इंसानियत से सराबोर है।

इस प्रकार कथाकार माधव नागदा की कहानियों के कथानक विभिन्न तरह की जिंदगियों और समय के चक्र से अवगत कराते हैं। मुहावरे और लोकोक्तियों का समावेश कहानियों को जीवंत बनाता है। शिल्प सौष्ठव इतना मजबूत है कि पाठक बँध जाता है। ◆

कहानी–संग्रह का नाम अंजलि भर उजास
लेखक–माधव नागदा
प्रकाशक–के. एल. पचौरी प्रकाशन, गाजियाबाद
मूल्य–350 रुपये मात्र, पृष्ठ –148

पता : भाड़ावास हाउस, सी–137, महेश नगर, जयपुर–302015
मो. : 96360–53497

सुहैलनामा एक सफल काव्यात्मक आत्मकथा

❑ मोहम्मद गोफरान नसीम

हिन्दुस्तानी साहित्य जगत में जब कोई काव्यात्मक जीवनियों पर नजर डालता है तो अक्सर निराशा ही होती है। लेकिन अगर शोध में रुचि और अंतराष्ट्रीय स्तर पर मजबूत नजर हो तो दो काव्यात्मक आत्मकथाएं या जीवनियां मिलती हैं। एक पाकिस्तान की मशहूर और लोकप्रिय शायर हिमायत अली की 'आईना दर आईना' है और दूसरी एक महिला शायरा रशीदा आयान की जो कि पैदा तो हुयीं मुरादाबाद उत्तर प्रदेश में लेकिन बाद में अमेरिका में बस गयी हैं, की की काव्यात्मक आत्मकथा 'मेरी कहानी' के नाम से है। दोनों शायरों ने कला के प्रति प्रतिबद्धता कायम रखते हुए यह बहुत कठिन और महत्वपूर्ण सृजनात्मक काम अंजाम दिया है। यकीनी तौर पर ये काव्य प्रयास काव्या साहित्य की बहुमूल्य पूंजी हैं। इसी कड़ी में लखनऊ के विश्वसनीय और विश्वस्तरीय कवि सुहैल काकोरवी की काव्यात्मक आत्मकथा 'सुहैलनामा' प्रकाशित हुई। यह भारत में काव्यात्मक जीवनी संबंधी कार्य का पहला प्रयास है। सुहैल काकोरवी चार भाषाओं हिंदी, उर्दू, फारसी और अंग्रेजी, के विशेषज्ञ हैं, उनकी किताबें इन चार भाषाओं में उपलब्ध हैं। जिनमें से दो पुस्तकें बुक ऑफ रिकॉर्ड में सूचीबद्ध हैं। आम दुनिया का मशहूर फल है इस फल पर भी सुहैल काकोरवी ने बहुत शायरी की और आम पर कविता में उनकी पुस्तक 'आमनामा' लिम्का बुक ऑफ रिकॉर्ड (2015) में दर्ज है। गजल और शायरी में हिन्दुस्तानी मुहावरों के प्रयोग पर उनकी पुस्तक 'नीला चॅांद' एशिया बुक ऑफ रिकॉर्ड (2021) में दर्ज हुई। यह दोनों पुस्तकें अपने आपे एक मिसाल हैं और हिन्दुस्तानी साहित्य में उसकी मिसाल नहीं मिलती है। नीला चॉद में गजल के रूप में लिखी किताब है जिसमें सैकड़ों मुहावरों का सरल प्रयोग किया गया है जिसके पढ़ने से पाठकों को बहुत से मुहावरों का ज्ञान होता है। अपनी साहित्यिक रचनात्मक कार्यों को आगे बढ़ाते हुए सुहैल काकोरवी ने अपनी जीवनी भी काव्य में लिखने का बीड़ा उठाया, यह साहित्य और शायरी से उनका जनून की हद तक लगाव का प्रतीक है। जिसे उन्होंने 'सुहैलनामा' के नाम दिया है।

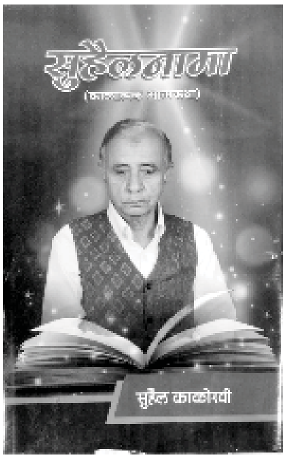

308 पृष्ठों वाली पूरी किताब सुहैलनामा इतनी दिलचस्प है कि पाठक एक बार पढ़ना शुरू करे तो पूरी पढ़े बिना रूक नहीं पाता है। हर पद्य में ऐसा आकर्षण, ऐसा जुड़ाव है कि पाठक अगले पद्य पढ़ने के लिए खुद को मजबूर पाता है। भाषा और अभिव्यक्ति की दृष्टि से इस जीवनी में कुछ भी छुपाने का प्रयास नहीं किया गया है। जैसे–जैसे घटनाएं घटीं और याद आती जाती हैं, वैसे–वैसे काव्यात्मक रूप लेती जाती हैं और कहानी खूबसूरती के साथ आगे बढ़ती जाती है। कविताएँ कवि की मनोदशा को दर्शाती हैं, जो गजल पर आधारित है और बिना किसी

संदेह के यह कहा जा सकता है कि सत्य को नकारा नहीं गया है। अपनी कमजोरियों को व्यक्त करने में झिझक कहीं देखने को नहीं मिलती। लेखक ने अपने किशोर अवस्था के रोमांस के एक प्रसंग बहुत ही रोचक अंदाज में पेश किया है।

लेखक ने प्रेमिका को 'इरतिका' के नाम से संबोधित किया है। घटना यूं है जक प्रेमिका से मुलाकात के बाद उसे घर छोड़ने जा रहा था, मंजिल यानी घर आने से पहले ही प्रेमिका के पिता रास्ते में मिल गए फिर जो हुआ, उसे लेखक ने यूं लिखा है।

"एक थप्पड़ मुझको मारा 'इरतिका' के बाप ने
इस पे मैं खुश था कही कहीं देखा है मुझसा आप ने"

जीवनी का यही गुण माना जाता है कि जैसा घटित हुआ वैसा ही सुनाया या लिखा जाए। जीवनी के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि शायर मनमौजी है और उसकी यह आदत प्रेम प्रसंगों में इतनी प्रमुख है कि उसके जीवन में कई हसीनाएं आयीं और चली गयी। मामला कई दिशाओं में चला, पता नहीं ऐसा क्यों हुआ, ये जिज्ञासा भी मजेदार है, लेकिन बेवफाई का कोई जिक्र नहीं है, बल्कि अगर किसी से दूर होने या बिछड़ने की कहानी है, तो वही मनमौजी स्वभाव भी उसका कुसूरवार दिखाई देता है।

जीवनी में देशभक्ति, मानवता, एकता और सद्भावना जैसे विषयों पर शेर हैं। त्यौहारों और मौसमों के अलावा प्रकृति की घटनाओं पर भी गजलें है। सुहैल काकोरवी ने अपने चाहने वालों संबंधित कवियों और बुद्धिजीवियों के नाम भी बहुत सुंदर ढंग से लिखे हैं।

सुहैल के कलम में रवानी है, बेबाकी है जो पाठकों को लुत्फ देती है।

नमूने के तौर पर कुछ शेर प्रस्तुत हैं।

मोती टके हैं मुझमें, यह अनमोल ऐ सुहैल
उर्दू है और मुहब्बते हिंदुस्तान है

—

होली दिवाली ईद कन्हैया पे भी तो हैं
गजलें मेरी पसंद जो आ जाएं दाद दें

———

सुहैल काकोरवी बड़े 'कृष्ण भक्त' भी है। अमीर खुसरो, मलिक मोहम्मद जायसी, मुंशी इंशा अल्लाह खाँ इंशा, अब्दुर्रहीम खानखाना, स्वतंत्रता सेनानी मौलाना हसरत मोहनी के बाद आज के दौर में सुहैल काकोरवी की कृष्ण भक्ति को समझने के लिए उनके पद्य को पढ़ना जरूरी है। सुहैल अपनी काव्यात्मक जीवनी में कहते हैं।

अपनी कृष्ण भक्ति पे मुझको है फ़ख्रों नाज
अर्जुन पे खोलते थे ब्रह्मांड के वो राज
इसमें जो कर्म का है सबक उनका वो अजीम
जो भी इसे समझ ले यकीनन वो हो अजीम
उनके विराट रूप से अचरज में पार्थ थे
शक्ति मिली इसी से बढ़े उनके हौसले
सोलह कलाएं कृष्ण कन्हैया की ताबदार
थे बेगुमां अचूक बुराई पे उनके वार
आए इसी लिए कि मिटायें वो पाप को
वरदान में वो बदलें उपस्थित श्राप को
हर–हर अदा थी उनकी मोहब्बत का आईना
उनसे प्रेम करना था मुक्ति का रास्ता
लीलाएं उनकी जितनी सुनीं लाजवाब हैं
उसके असर से गीत मेरे इंतिखाब हैं
जज्बे से मैंने उन पे भजन भी कई कहे
जो पीर ओ पीरजादे के एहसास में बसे
ये काजिम ओ तुराब की सुन्दर परंपरा
सद शुक्र मुझसे इसका हसीं सिलसिला बढ़ा
दोनों ही कृष्ण भक्ति के उत्कृष्ट थे कवि
मीरास छोड़ी दोनों ने बेशक है कीमती
रूहानी महफिलों में वह गाये गए भजन
झूम उठे लोग रूह का ताजा हुआ चमन
हुस्न–ए–अमल से जिनके जहां फैजयाब था
काकोरी कस्बा उनका वतन है वही मिरा।
ये है कलाम 'काजिम' ओ शाहे 'तुराब' का
जो उनकी कृष्ण भक्ति का है साफ आईना

सावी पब्लिकेशन लखनऊ द्वारा प्रकाशित 'सुहैलनामा' पढ़ने लायक दिलचस्प किताब है।

इस काव्यात्मक जीवनी को पढ़ने के बाद पाठक निश्चित रूप से लेखक की अन्य कृतियों का अध्ययन करने के लिए प्रलोभित होंगे। खासकर प्रसिद्ध और लोकप्रिय कवियों द्वारा लिखी गयी गजल पर उनकी गजले बहुत महत्वपूर्ण है। यह कारनामा निश्चित रूप से कोई प्रतिभाशाली, ज्ञानी, जानकार व्यक्ति ही कर सकता है। मुहीउद्दीन सुहैल काकोरवी की साहित्यिक कृतियां लखनऊ साहित्यिक स्कूल का पूरी साहित्यिक दुनिया में प्रचार है। ◆

पता : 233/44, कोड़े वाली गली,
पाटा नाला, चौक, लखनऊ
मो : 9450401073, 8318361456

आध्यात्मिक राष्ट्रवाद के प्रणेता मैथिलीशरण गुप्त

❑ सुरेन्द्र अग्निहोत्री

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भारत भारती काव्य रचकर राष्ट्र की सो रही चेतना को जागृत किया : डॉ बाबूलाल तिवारी, सदस्य, विधान परिषद

नेमवि में दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी सम्पन्न

ललितपुर। उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ एवं नेहरू महाविद्यालय के संयुक्त तत्वावधान में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की स्मृति में–गद्य एवं पद्य विषय पर तुलसी सभागार में आयोजित दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी को सम्बोधित करते हुए मुख्य अतिथि कुलपति प्रो. किशन यादव ने कहा कि नेहरू महाविद्यालय ललितपुर अद्‌भुत सम्पदा का धनी है। महाविद्यालय शीघ्र ही विश्वविद्यालय का रूप ले, इसके लिए मेरी महाविद्यालय के प्रति सदैव शुभकामनाऐं रहेंगी। मैथिलीशरण गुप्त ने आध्यात्मिक राष्ट्रवाद की जो संकल्पना की थी, आज भारत में उस संकल्पना की नितांत आवश्यकता महसूस की जा रही है। उन्होंने मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित साहित्य के विभिन्न उदाहरण विद्यार्थियों के बीच रखकर नई पीढ़ी को उनके साहित्य के अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया। श्री यादव ने कहा कि प्रत्येक विद्यार्थी को अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए तीन लक्षणों पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। किसी व्याख्यान को धैर्यपूर्वक सुनने की क्षमता, लिखावट में सुधार और अभिव्यक्ति को व्यक्त करने की कला। यही तीन लक्षण जीवन का अधिकार है जो सभी को एक श्रेष्ठ दिशा में ले जाने के लिए प्रेरित करेगा। उन्होंने वर्तमान समय में हो रही माता–पिता की उपेक्षा पर नई पीढ़ी को को माता–पिता का सम्मान करने के लिए प्रेरित किया और कहा कि माता–पिता साक्षात देवता हैं। डॉ. बाबूलाल तिवारी सदस्य विधान परिषद ने गोष्ठी का शुभारम्भ करते हुए कहा कि राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भारत भारती काव्य रचकर

राष्ट्र की सो रही चेतना को जाग्रत कर देश को गुलामी से मुक्ति का पथ पर अग्रसर किया।

राज्यमंत्री उ.प्र सरकार एवं अंर्तराष्ट्रीय बौद्ध संस्थान के उपाध्यक्ष हरगोविन्द कुशवाहा ने कहा कि राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपने काव्य में कहा है कि ''राम तुम्हारा चरित्र ही स्वयं काव्य है''। उन्होंने रामरचितमानस के माध्यम से मर्यादा पुरुषोत्तम राम के नर से नारायण बनने की यात्रा का वर्णन कर जनमानस के बीच उनके आदर्श स्वरूप को रखा। मानस में सभी ग्रंथों का रस है, जिसका रसपान करने से मानव में महामानव की प्रतिष्ठता हो सकती हैं।

मध्य प्रदेश के राज्य निर्वाचन आयुक्त एवं पूर्व वरिष्ठ आईएएस डॉ. मनोज श्रीवास्तव ने अपने उद्‌बोधन ''राम तुम मानव हो, ईश्वर नहीं हो क्या, विश्व में रमे हुए नहीं सभी कहीं हो क्या'' से प्रारम्भ करते हुए राष्ट्रकवि द्वारा रचित साकेत महाकाव्य में प्रभु श्रीराम के जीवन चरित्र की विशद व्याख्या करते हुए कहा कि राम ने जीवन में उस भूमिका को स्वीकार नहीं किया जो उन्होंने अपने वंश से प्राप्त की थी। वंश परम्परा और उनके दायित्व को आधार न बनाकर एक नया बोध जो त्याग सेवा और समर्पण का मार्ग था, उस पर चलने का प्रण किया। विश्व रंगमंच पर उनकी लीला जन–जन के लिए प्रेरणा और मर्यादित दिशा की ओर अग्रसर होने का एक मार्ग था, जिस पर चलकर नर नारायण बनने की दिशा में अग्रसर हो सकता है।

नूतन कहानियां के सम्पादक सुरेन्द्र अग्निहोत्री ने राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के 12 वर्षों तक राज्य सभा के सदस्य के रूप में सक्रियता के अनेक प्रसंगों पर प्रकाश डाला।

राज्य सभा की बैठक में दद्दा नियमित रूप से सम्मिलित होते थे। सामयिक महत्व के विषयों के संबंध में वह जो भी बोलते थे, उस पर उनके कवित्व की छाप होती थी। राष्ट्रकवि ने भाषण भी सदा पद्य में ही दिये। यह उनका अपना अनूठा अंदाज था।

प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने जब 11 मार्च, 1958 को बजट प्रस्तुत किया तब श्री गुप्त ने अपनी काव्यात्मक शैली में देश की आर्थिक स्थिति व बढ़ते हुए करों के संबंध में असंतोष प्रकट करते हुए अपने विचार सदन के सम्मुख कुछ इस प्रकार रखे–

हम में हैं मतभेद बहुत कुछ किंतु एक मत सब इसमें,
ऐसा हो निज–पर का सबका योगक्षेम सधे जिसमें।
इतना ही क्या अल्प, अंत में यहां एक ही सबका लक्ष,
वहां प्रमाद सहज संभव है, जहां न हो कोई पर–पक्ष।

बजट के अतिरिक्त अनेक अन्य महत्वपूर्ण सामयिक विषयों पर मैथिलीशरण गुप्त के ओजस्वी विचारों को संसद में सुनाई गई उनकी रचनाओं में सहजता से सुना जाता था।

समारोह के अध्यक्ष नेमवि के प्राचार्य प्रो. डॉ. ओमप्रकाश शास्त्री ने कहा कि बुन्देलखण्ड की पावन धरा

वीरों, पराक्रमियों, विद्वानों एवं कवियों की जन्मस्थली रही है। बुंदेलखण्ड की पावन धरती पर जन्म लेकर राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने स्वतंत्रता आन्दोलन के समय अपनी रचनाओं द्वारा सम्पूर्ण भारत देश को अध्यात्ममय बनाते हुए एकता के सूत्र में बांधकर युवा पीढ़ी को प्रेरित करते हुए देश की आजादी के लिए योगदान किया। आज सम्पूर्ण भारत में उनकी रचनाओं का विद्वानों द्वारा मनन चिंतन एवं अध्ययन किया जाता है।उ.प्र. हिंदी संस्थान लखनऊ की प्रधान सम्पादक डॉ. अमिता दुबे ने कहा कि संस्थान द्वारा राष्ट्रकवि गुप्तजी की स्मृति में उत्तर प्रदेश के श्रेष्ठतम नेहरू महाविद्यालय में दो दिवसीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया है।

विद्वान शिक्षकों, सम्पूर्ण देश से पधारे विद्वानों एवं साहित्यकारों ने दो दिनों में लगातार राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के गद्य एवं पद्य साहित्य पर सारगर्भित शोध पत्र एवं व्याख्यान प्रस्तुत किए। संस्थान द्वारा शीघ्र ही पुस्तक के रूप में इन विद्वानों के लेख प्रकाशित किए जायेंगे। उन्होंने सफल आयोजन के लिए महाविद्यालय के प्राचार्य सहित सम्पूर्ण महाविद्यालय परिवार का आभार व्यक्त किया।

दो दिवसीय संगोष्ठी के समापन अवसर पर आभार व्यक्त करते हुए मंत्री/प्रबंधक प्रदीप चौबे ने कहा कि महाविद्यालय का सदैव प्रयास रहा है कि महाविद्यालय में श्रेष्ठ, साहित्यिक, बौद्धिक एवं रचनात्मक कार्यक्रम होते रहें, जिसमें विद्यार्थियों को महापुरुषों के बारे में जानने की प्रेरणा मिले, क्योंकि महापुरुषों के प्रेरक प्रसंग ही विद्यार्थियों को एक श्रेष्ठ नागरिक बना सकते हैं।

संगोष्ठी के चतुर्थ तकनीकी सत्र में मैथिलीशरण गुप्त का गद्य साहित्य विषय पर अखिल भारतीय साहित्य परिषद के महामंत्री डॉ. महेश पाण्डेय बजरंग, डॉ. अमिता दुबे प्रधान संपादक उ.प्र. हिन्दी संस्थान, लखनऊ, साहित्यकार आत्माराम शर्मा भोपाल, आचार्य संस्कृत डॉ. शशि कुमार सिंह, सह आचार्य बुवि झाँसी डॉ.श्री हरि त्रिपाठी आदि ने शोध पत्र प्रस्तुत किए। इस मौके पर सत्येन्द्र कुमार पाठक एवं लक्ष्मी नारायण बुनकर द्वारा रचित पुस्तक का विमोचन भी किया गया।

पंचम तकनीकी सत्र में मैथिलीशरण गुप्त के साकेत महाकाव्य में राम विषय पर राज्यमंत्री हरगोविंद कुशवाहा, उपाध्यक्ष अंतर्राष्ट्रीय बोध संस्थान, निर्वाचन आयुक्त मध्य प्रदेश डॉ. मनोज श्रीवास्तव, सेवानिवृत्त आईएएस प्रमोद कुमार अग्रवाल, श्री गणेश गिरिवर के प्राचार्य डॉ. बालमुकुंद मिश्र, मुक्तिनाथ झा सत्यम कुमार शोधार्थी दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली, सुरेन्द्र अग्निहोत्री सम्पादक नूतन कहानियां ने प्रस्तुत विषय पर शोध पत्रों का वाचन किया।◆

पता : ए–305 ओ.सी.आर. बिल्डिंग,
विधानसभा मार्ग, लखनऊ
मो. : 09415508695

मेरी माँ की ममता

—विभा कनन

मुख की सुन्दरता
दर्शाए मोहकता
नूतनता
मेरी माँ की ममता।

मन की चंचलता
बतलाए निर्मलता
निश्छलता;
मेरी माँ की ममता।

समझने की सुगमता
समझाए तन्मयता
कार्य कुशलता
मेरी माँ की ममता।

वाणी की मधुरता
पढ़ाए नैतिकता
मानवता
मेरी माँ की ममता।

•

पता : नं. 26, कृष्ण राघवन नगर,
बोडिपलायम मदुकरई,
कोयम्बटूर, तमिलनाडु–641105
मो. : 9621400533

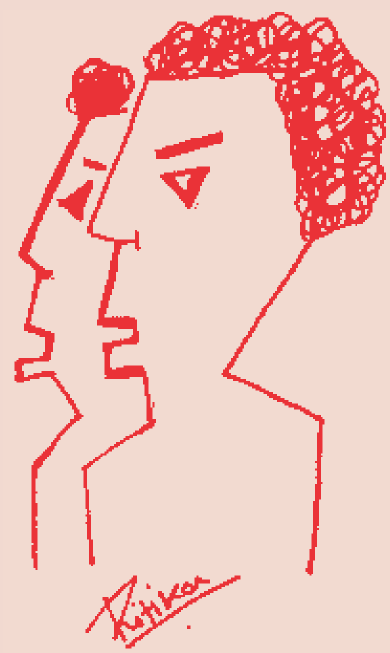

भारत सरकार के रजिस्ट्रार आफ न्यूज पेपर्स की रजिस्ट्री संख्या 33122/78
भारतीय डाक विभाग की डाक पंजीयन संख्या–एल.डब्लू./एन.पी. 432/2006

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश

प्रमुख प्रकाशन

उत्तर प्रदेश मासिक : समकालीन साहित्य, संस्कृति, कला और विचार की मासिक पत्रिका समूल्य उपलब्ध एक अंक रु. 15/– मात्र, वार्षिक मूल्य रु. 180/– मात्र।

नया दौर (उर्दू) : सांस्कृतिक एवं साहित्यिक विषय की एक उर्दू मासिक पत्रिका, एक अंक रु. 15/– मात्र, वार्षिक मूल्य रु. 180/– मात्र।

वार्षिकी (हिन्दी/अंग्रेजी) : उत्तर प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों के विस्तृत आंकड़ों एवं सूचनाओं का वार्षिक विवरण मूल्य रु. 325/– मात्र।

महत्वपूर्ण प्रकाशनों के लिए सम्पर्क करें

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र.
दीनदयाल उपाध्याय सूचना परिसर, पार्क रोड, लखनऊ
उत्तर प्रदेश के समस्त जिला सूचना कार्यालय

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र. स्वत्वाधिकारी के लिए विशाल सिंह, निदेशक, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र. लखनऊ द्वारा प्रकाशित तथा प्रकाश पैकेजर्स, लखनऊ में मुद्रित